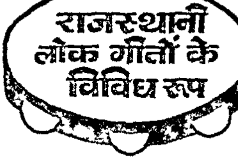


डा० जगमल सिंह

राजस्थानी लोकगीतों के विविध रूप

डा० जगमल सिंह
एसोशिएट प्रोफेसर हिन्दी-विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय,
कांचीपुर : इम्फाल : ७९५००३ मणिपुर

बिनसर प्रकाशन
बाबा गगनाथ मार्कीट, मुनीरका
नई दिल्ली - ११००६७

राजस्थानी लोक गीतो के विवध रूप

(Rajasthani Lok Geeton ke Vivid Roop)

लेखक डा० जगमल सिह

आवरण शिल्पी कुलदीप

प्रथम सस्करण १९· ७

मूल्य रु० ८०•००मात्र (अस्सी रुपये मात्र)

प्रकाशक बिनसर प्रकाशन डी ९७ बाबा गगनाथ मार्केट मुनीरका
नई दिल्ली ११००६७

मुद्रक बिनसर प्रिंटर्स मुनीरका नई दिल्ली-११००६७

पूज्य एव ममतामयी मातृ श्री
को
सादर समर्पित

अनुक्रमणिका

"श्री गणेशाय नमः"

प्रारम्भिका

कवि सुमित्रानन्दन पंत ने जब घोषणा की थी :

यह तो मानव लोक नहीं रे, यह हो नरक अपरिचित ।
यह भारत का ग्राम सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित ॥

तब उन्हें शायद ध्यान नहीं था कि 'लोक साहित्य' शब्द में प्रयुक्त पूर्व पद 'लोक' (Folk) की कसौटी पर उनकी 'लोक' विषयक धारणा खरी नहीं उतरती। लोक साहित्य का 'लोक' संकुचित अर्थ मे ही क्यों न हो, प्रायः 'गँवार' के अर्थ बोधन मे ही सक्षम है—गँवार' यानी पारम्परीण शास्त्र सम्मत ज्ञान, बँधी शिक्षा, शहरी संस्कृति, अभिजात्य संस्कार आदि से प्राय शून्य। अभिजात संस्कार-सम्पन्न और चन्दन की सुरुचि लचकीली टहनी-से कोमल गात्र पंत का 'लोक' के प्रति विकर्षण चौंकाने वाला नहीं है। 'गवई गवार' के प्रति ईर्ष्य बिहारी ने भी कभी ऐसी ही सहृदयता दिखायी थी।

भारतीय चिन्तन प्रवाह मे 'लोक' के लिए तीन शब्द प्रचलित रहे हैं—जन, ग्राम, और लोक। 'जन्' धातु से निष्पन्न 'जन' शब्द का जनपद, 'जन राज्य', 'जानराज्य' आदि मे उत्पत्ति स्थान के अर्थ मे और 'जन प्रवाद', 'जन प्रवाह', 'जनाधिप', 'जनेश्वर', 'जनता' आदि में सब लोग के अर्थ मे प्रयोग सुरक्षित है। गोस्वामी तुलसीदास की उक्ति "जन जानि करब सनेह बलि कहि दीन बचन सुनावहिं" मे 'जन' शब्द लोक (Folk) के अर्थ मे ही प्रयुक्त हुआ है। 'जन' शब्द की विस्तृत अर्थ-परिधि के कारण ही डा० भीमचन्द्र और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वान् इसे अंगरेजी 'फोक' के पर्याय के रूप मे प्रचलित करने के हिमायती हैं।

'जन' की तुलना में 'ग्राम' शब्द सकीर्ण अर्थ का बोधक है। इसके प्रयोग में लोकभावना अति सीमित हो जाती है। कहा नहीं जा सकता कि 'लोक' के अर्थ में 'ग्राम' का चलन कितना प्राचीन है, पर गोस्वामी तुलसी दास जब 'ग्राम्य गिरा' (लोकवाणी) की बात कर रहे थे, तो उनका आशय

असंस्कृत–अभिजात संस्कार हीन–वाणी (गीत) में ही था। 'फोक' के अर्थ में 'ग्राम' शब्द को प्रचलित करने में पक्षधर रहे हैं रामनरेश त्रिपाठी। इस निमित्त उनके अपने तर्क हैं पर सीमित अर्थ बोधन के कारण ही यह शब्द चल नहीं सका।

मूल बात है चल पड़न की। 'फोक' के लिए 'लोक' शब्द चल गया है। अब यह मान्य हो गया है पर 'जन' की अपेक्षा इसकी अर्थबोधन-क्षमता सीमित है। लोक' शब्द का प्रचलन उतना ही प्राचीन है जितनी भारतीय चिन्ताधारा। भारतीय चिन्ताधारा के विकास के आरम्भिक दिनों में वैदिकों ने अवैदिकों के कतिपय रीति रिवाजों, कृत्यों, आचारों आदि को अपनाया तो अवश्य, पर उन्हें शास्त्रों में स्थान नहीं दिया। स्वस्थ विकास की दृष्टि से समाज में उनका समन्वयन तो हुआ, पर वे बने रहे वेद बाह्य ही। वेद और वेद-परम्परा-सम्मत चिन्ताधारा की व्याख्या हुई वैदिकी और वेद-बाह्य किन्तु समाज द्वारा स्वीकृत मान्यताएँ हुईं अवैदिकी यानी लौकिकी। प्रमाण-पुष्टि हेतु महर्षि व्यास का अग्रांकित कथन विचारणीय है—

वैदाच्च वैदिका शब्दा सिद्धा लोकाच्च लौकिका युधिष्ठिर के निर्वेद की समाप्ति के लिए उपदेश करते समय महर्षि व्यास की ही उक्ति है — 'सर्वथा लौकिकी राजन्न हिनस्ति न इष्यते।' यानी लोक' में ऐसा मान्य है कि एक ने दूसरे की हत्या की अथवा किसी और ने और किसी की हत्या की, यह मात्र 'लौकिकी संज्ञा' है। यह भी ऊपरी स्थिर मत का ही पोषक है।

श्री 'मद्भगवद्गीता' (१५/१८) की उक्ति अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तम' एवं गोस्वामी तुलसीदास के (१) करब साधुमत, लोकमत नृपनय, निगम निचोरि, (२) लोक कि वेद बड़ेरे (३) लोकहु वेद न आन उपाऊ, जैसे उद्घोषों से भी यही प्रमाणीकृत होता है। इस हेतु कहा जायेगा कि 'वेद' और 'लोक'–परम्परा से प्रसूत दो चिंता धाराएं भारतीय मानस में अति प्राचीन काल से ही मान्य रही है। अस्तु 'लोक' का पूर्ण विस्तृत अर्थ होगा–जो वेद वेद-परम्परा में मान्य है उसके अतिरिक्त, किन्तु लोक स्वीकृत। इसका एक संकुचित अर्थ भी है, जिसी ओर पूर्व पंक्तियों में संकेत किया जा चुका है। लोकसाहित्य या लोकगीत में 'लोक' शब्द अपने संकुचित अर्थ में ही प्रयुक्त होता है जो साहित्य शास्त्रीय मानदण्डों के अनुकूल रचित अभिजात साहित्य या काव्य से भिन्नता का बोधन कराता है।

स्थानवाची अर्थ मे भी 'लोक' शब्द प्राचीन काल से ही प्रयुक्त होता रहा है। त्रिलोक, मानवलोक और चौदह लोक मे 'लोक' स्थान का ही बोध कराता है। लोक साहित्य या लोकगीत के पूर्व विशेषण रूप मे प्रयुक्त भारतीय, यूरोपीय, रूसी आदि शब्द स्थान बोधक ही होते हैं। प्रस्तुत पुस्तक के शीर्षक 'राजस्थानी लोकगीतो के विविध रूप' मे 'राजस्थानी' शब्द स्थान क्षेत्र विशेष–का बाधक है। उसमे सूचना मिलती है कि इनमे आलोच्य गीतो का चलन राजस्थान मे है।

पुस्तक-शीर्षक मे प्रयुक्त 'लोकगीत' शब्द का भी किंचित् स्पष्टीकरण कर देना अप्रासंगिक नही होगा। 'लोकगीत' शब्द से तीन अर्थ ध्वनित होते है--

क लोक यानी (यहाँ) राजस्थान विषयक गीत, ख. लोक यानी समूह द्वारा रचित गीत, और ग. लोक यानी राजस्थान मे प्रचलित और वहा के ग्रामीणो द्वारा गाये जाने वाले गीत।

आलोच्य पुस्तक मे वर्ण्य मात्र तीसरे अर्थ का पोषण करते हैं। प्रथम दो अर्थों मे यहा लोकगीत शब्द प्रयुक्त हुआ ही नही है। पुस्तक मे अध्ययनीय गीत और न तो राजस्थान विषयक हैं और न वे समूह द्वारा रचित हैं। समूह द्वारा वे गाये अवश्य जाते हैं, वस्तुत समूह कभी किसी गीत की रचना नही करता। गीतो के रचयिता होते हैं व्यक्ति विशेष ही, पर कालान्तर मे वे समाज की सामूहिक सम्पत्ति बन जाते हैं। रचयिता या प्रथम गायक का नाम सदा के लिए ओझल हो जाता है। लोकगीतकार या गायक को नाम और यश की लालसा कतई नही होती। तभी रचयिता या गायक का नाम मिट जाता है, पर उसका गीत पीढी-दर-पीढी लोकमानस मे जीवित रह जाता है। पुस्तक मे विवेचित गीतो के लिए भी यही सत्य है। अस्तु, इसे विस्मृत करने की आवश्यकता नही कि 'राजस्थानी लोकगीत' पद यहा मात्र तीसरे अर्थ मे ही प्रयुक्त हुआ है। इस सम्बन्ध मे यहा इतना और सकेत करना अलम् है कि मात्र राजस्थानी जन ही नही, अपितु समस्त हिन्दी-क्षेत्र मे कतिपय कालजयी कवियो–विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि के गीत चलते रहते है। राजस्थान मे मीरा, आदा, दुरसा जी, सूर्यमल्ल मिश्रण आदि के गीत बहु प्रचलित है, किन्तु वे न तो लोकगीत की परिधि मे सिमटते हैं और न वे यहाँ विवेच्य ही हैं। लेखक न राजस्थानी

लोकगीतों की परिधि मे मात्र उन गीतों को ही अध्ययनीय बनाया है जो मौखिक परम्परा मे पीढ़ी-दर-पीढ़ी राजस्थानी ग्रामीणों में अद्यावधि प्रचलित और सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। उनका यह कृत्य न्यायोचित है।

वर्तमान राजस्थान का क्षत्र बड़ा विस्तृत है। विभिन्न प्राचीन जनपदो अथवा निकट भूतकालीन विभिन्न राज्यो का यह अपेक्षया नवीन राजनीतिक सघटन है। इसमे विभिन्न गोष्ठियों की अनेक जातियाँ हैं अधिकाश जातियों के न केवल अलग-अलग रीति-रिवाज, आचार-उच्चार पर्व-उत्सव और तीज-त्योहार हैं बल्कि उनमे भाषागत वैभिन्य भी है राजस्थान हो या भारत का कोई अन्य राज्य, यह स्थिति नई नहीं है। यह विशिष्टता अति प्राचीन है। तभी अथर्वा ऋषि ने भारतीय समाज को बहुधर्मा 'बहुधा विवाचस' कहा था—जन बिभ्रती बहुधा विवाचस नाना धर्मणि पृथिवी यथौकसम्-(१२/१/४५)। शतपथ ब्राह्मण (७/५/२/३३-३६) में मनुष्य-अश्व गो-अवि-अज, ये पाँच ग्राम्य पशु कहे गये हैं जो परस्पर मिल कर रहते थे। इनका मिल-जुल (समूह बना) कर रहना ही 'समज्' था जिसका विकसित अधुना प्रचलित रूप है समाज। और यह गोपन रहस्य है कि समाज यानी लोक में मनुष्य से बढकर श्रष्ठ और कुछ नहीं है—

…नहि मनुष्याच्छ्रेष्ठतर हि किंचित्। –शाति पर्व १८०/१२

तभी जिन्हे गँवार कह कर तथाकथित सभ्य तिरस्कृत करते हैं, महर्षि व्यास ने उन्हें ही 'भौम ब्रह्म (लोक मे निवास करने वाला मनुष्य रूपी ब्रह्म, शाति पर्व ५८/११५) घोषित किया है। राजस्थानी 'भौम ब्रह्म' यानी लोक बड़ा विस्तृत है। उस विस्तार को लोकगीतो के माध्यम से व्यक्ति विशष (लेखक) के लिए सम्यक रूप से देख लेना दुष्कर नहीं तो बड़ा सहज भी नहीं है। इसकी श्रम साध्यता अनुमेय भर है। लोक' की विस्तृति और प्रत्येक वस्तु मे व्याप्ति का सकेत प्राचीनो ने भी किया है। यहाँ मात्र जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (३/२८) का साक्ष्य अप्राकित है—बहु व्याहितो वा अय बहु शोलोक:। क एतद अस्य पुनरीहतो अयार् इसीलिए 'लोक' को समग्रता म देख पाना विरलो क लिए ही सभव हो पाता है। उसकी श्रम साध्यता के कारण ही महर्षि व्यास को मत स्थिर करना पड़ा था कि जो 'लोक' को खुली आँख से दखन म समर्थ है, वही उसे समग्रता मे देख पाता है—सर्वदर्शी होता है:

प्रत्यक्षदर्शी लोकाना सर्वदर्शी भवेन्नर : ।--उद्योग पर्व ४३/३६

प्रस्तुत लेखक के लिए यह इसलिए सभव हो गया है कि राजस्थान की मिट्टी ने उसे जन्म और जीवन दिया एव लेखक ने उसे अपना स्वर्णिम यौवन (इसमे संकलित लेख दस-पन्द्रह वर्ष पूर्व ही लिखित-प्रकाशित हैं) । डा जगमल सिंह ग्रामीण निर्भीक के मन मे जन्मभूमि मे बिखरे गीतो को सहेजने, समेटने और अध्ययनीय बनाने और बीसो बर्षों से अनवरत इसी कार्य मे जुटे रहने के उत्साह मे ही यह सब हो गया है जिसका एकांश पुस्तकाकार हो आप तक अभी पहुँच पाया है ।

लोकगीत लोकव्यवहार का लयात्मक ललित रूप होता है । वह दुष्काम्य इच्छापूर्ति की मात्र स्वप्निल व्यक्ति नही, अकुठ प्राकृत भावनाओ की लयात्मक अभिव्यक्ति होता है । सरलता सक्षिप्तता, स्पष्टता, स्वाभाविकता, एकतानता, अनुभूति प्रवणता, सागीतिकता आदि उसके नित्य धर्म हैं । उसमे स्वर और राग की अपेक्षा लय का महत्व अधिक होता है । कारण, अधिकाश लोकगीतो का गायन सामूहिक होता है । प्रस्तुत पुस्तक मे भी सामूहिक गायन के ही अधिकाश गीत अध्ययनीय बने हैं । लोकगीतो का सामूहिक गायन एव लयात्मकता और सगीतिकता की प्रधानता ऐसा मानने को विवश करती हैं कि सभ्यता के आरम्भिक दिनो में 'समज्' मे इसका जन्म और विकास श्रम के साथ-साथ और समानान्तर ही हुआ होगा । अब भी अनेक लोकगीत न केवल श्रम से सम्बद्ध हैं, अपितु श्रम-परिहार के लिए वैयक्तिक और सामूहिक रूप मे गाये भी जाते हैं । श्रम पूर्वक अर्जित लाभ भारतीय लोक सस्कृति की ही नही, मार्गीय संस्कृति का भी वैशिष्ट्य रहा है । तभी महाराज ययाति ने, स्वर्ग के द्वार पर देवो द्वारा यह पूछे जाने पर कि 'आपको किस लोक मे ले चलूं उत्तर मे कहा था--

अह तु नाभिगृह्णामि यत्कृतं ।--मत्स्यपुराण ४२/११ अर्थात् मैं कोई भी वैसी वस्तु नही चाहता जिसके लिए पहले मैंने श्रम नही किया हो । 'यथा श्रम तथा लाभ' का यह मार्गीय विधान अपनी लोक सस्कृति ही देन है । कृषि प्रधान भारतीय सस्कृति मे कृषि श्रम को सर्वाधिक महत्ता प्राप्त रही है । महर्षि व्यास ने तो विधान ही किया था कि हममें से जो किसानी नही करता, वह समिति (ममद) में बैठने का अधिकारी नही है--

न न. स समिति गच्छेत् यश्च नो निर्वपेत कृषिम् । उद्योग पर्व ४६/२१.

स्पष्ट है कि महाभारत युगीन मार्गीय सस्कृति श्रमाधारित किसानी सस्कृति-लोकसस्कृति को गँवई अथवा गँवार कहकर दुत्कारती नही थी। इस सूत्र की गरिमा को भुला दिये जाने का ही परिणाम है कि भारत आज न केवल अपना 'स्व' खोता जा रहा है, बल्कि अपनी अस्मिता की पहचान बनाये रखने वाली हर *छोटी-बडी वस्तु को नकारने पर तुला है। लोकगीतो का* सम्बन्ध, चाहे वह कही का हो, मार्गीय सस्कृति से अत्यल्प होता है। आज की नगरीय सस्कृति भी लोकगीतो की प्राय उपेक्षा ही करती है। सस्ते फिल्मी गीत भी लोकगीतो के लिए मारक बन रहे हैं। अद्यावधि मे लोक-कण्ठ में सरक्षित-सुरक्षित रहे है। डर है कही भविष्य म फिल्मी गीत इनका लोकाश्रय भी न समाप्त कर दें। लोक संस्कृति और मार्गीय संस्कृति में वस्तुए यदा-कदा विनिमेय भी बनती रही हैं। मार्गीय सस्कृति में ऐसे अनेक कृत्य स्वीकृत हैं *जिनका मूल उत्स लोकसस्कृति में खोज लिया जा सकता* है। ठीक वैसे ही लोकसस्कृति भी मार्गीय सस्कृति से बहुत बातें अपनाती रही हैं। लोक सस्कृति और लोकगीतो की महत्ता का अनुमान इससे भी होता है कि सस्कार-सम्पादन तक मे निबन्धकारो ने लोकरीति को पालनीय घोषित किया[1] है। यह सब होने के मूल म है लोकसस्कृति और लोकगीत का श्रमाधारित होना। खैर जाने भी दीजिए। यहा वक्तव्य मात्र इतना ही है कि लोकसस्कृति के साथ-साथ मार्गीय सस्कृति मे भी श्रम को *पूर्ण महत्व मिला है। यही कारण है कि अपने मनीषियो ने पुरुषार्थ* साधन के निमित्त मानव जीवन को श्रमाधारित व्यवस्थाओ—चार आश्रमो—में सयोजित करने का विधान किया था। आज उनके नाम भर शेष है।

श्रम की ही अपर सज्ञा है कर्म। यह लोक (अपनी मातृभूमि) ही कर्मभूमि है (वन पर्व २६१/३५)।

दूसरी ओर मनुष्य का लक्षण ही कर्म है (आश्वगृह्यसूत्र ४३/२०)। शरीरकर्म (श्रम) से लोकगीत मात्र का ही नही, समस्त लोककलाओ का

१. आश्वलायन गृह्यसूत्र (१/७/१-२) मे उल्लिखित है कि "विभिन्न देशो एवं ग्रामो मे विभिन्न लोकाचार हैं उनका अनुसरण किया जाना चाहिए।" आपस्तम्बगृह्यसूत्र (२/१५) के *अनुसार विवाह की* पारम्परीय विधि स्त्रियो एव अन्य अनुभवी व्यक्तियो से जाननी चाहिए।

अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। कार्ल बूचर की भी मान्यता यही है--"मानव श्रम के साथ ही पैदा हुई होगी लय, संगीत और कविता। लय के साथ किये जाने वाले कार्य मे श्रम अपेक्षया सहज हो जाता है। किसी कार्य को सामूहिक तौर पर करते समय हाथो मे शक्ति का सघटित रूप उपस्थित करने के लिए उसे एक जुट करना आवश्यक होता है। मासपेशियो के कार्य मे सघटित शक्ति का जब इस प्रकार अधिकतम उपयोग करना होता होगा, तो श्रमिको के मुख से स्वत तक सम्मिलित स्वर फूट पडता होगा। कालान्तर मे मनु-पुत्रो (मानव) ने उन स्वरो को शब्दो के लयात्मक आवरण म अभिव्यक्त करना सीखा होगा। इस प्रकार उत्पत्ति हुई होगी गीत की। श्रम करते समय प्रयुक्त औजारो की धातुओं से टकराहट और तत्परिणाम स्वरूप फूटने वाले स्वर भी प्रेरणादायक बने होगे और प्रारम्भिक वाद्ययत्रो की कल्पना भी उसी से हुई होगी (Arbeit and Rhthmus)।" चक्की चलाती, रोटी सेकती नारियो और बागड मे वर्षा की फुहार से कृषि कार्य की अनकूलता और कृषक जीवन की व्यस्तता विषयक पुरुषों के गीतो मे उसके अवशेष आज भी सुरक्षित है।

पुरुष और नारी, दोनो श्रम करते हैं। श्रम करते समय या श्रम के परिहार के लिए गीत दोनो गाते हैं। तभी कुछ लोकगीत मात्र पुरुषों तक सीमित होते हैं -- कुछ का गायन मात्र मनुष्य ही करते हैं। कुछ गीत मात्र स्त्रियाँ ही गाती हैं। कुछ का गायन पुरुष और स्त्री दोनो सम्मवेत रूप मे करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक के विभिन्न लेखो मे विवेचित गीतो मे यह वैविध्य वर्तमान है। यो स्वभावत. अधिकाश लेखो में वैसे गीतो को ही महत्व मिला है जिनमें नारी मानस की प्रधानता है। या जिनका गायन नारियो के मध्य अधिक प्रचलित है। पुरुषो मे प्रचलित अथवा मात्र पुरुषो द्वारा गाये जाने वाले विवेचित अधिकाश गीतो पर नजर डालने से यह अनुभव हुए बिना नही रहता कि जगमल जी ने उन गीतो को अत्यधिक महत्व दिया है जिनमे नारी की स्थिति (Psyche), उसकी धर्मिता (Womanhood) और उसके प्रति पुरुष के अन्तर्लोक में सचित काममूला भावना का प्रकाशन हुआ है अथवा पुरुषों की वीरता और लोककल्याण वेदिका पर आत्माहुति करने का।

अधिमख्य लोकगीत नारियो में प्रचलित होते है। मभ्यता के

आरम्भिक दिनो मे ही 'गीत और नृत्य के प्रति नारियाँ संभवत: अधिक आकर्षित होती रही हैं। न केवल भाव प्रवण अपितु वे सहज ही मार्गच्युत होने वाली भी समझी जाती रही हैं। शतपथ ब्राह्मण का मादय इस निमित्त विचारणीय है --

मोघ सहिता एव योषा। तस्माद् एव नृत्यति यो गायति तस्मिन्नेवेता निमि इलतमा इव। प्रस्तुत पुस्तक मे विवेचित साखियाँ, पर्पया गीत एव यौन प्रतीको की अभिव्यक्ति, अश्लीलता एव हास्य विनोद विषयक लेखो मे उद्धृत गीतादि भी नारियों के शीघ्र फिसलन और गीत-नृत्यादि के प्रति सहज आकर्षण की ही पुष्टि करते है। देवर-भाभी के परिहासपरक गीतो में भी इसकी अनुगूज मिलती है। सभवत इन दुर्बलताओ के कारण ही मैत्रायिणी सहिता (४/६१४) ने गृहस्थो के यहाँ बालिकाओं के जन्म लेने को सकट का आगमन और दुर्भाग्य पूर्ण घोषित किया होगा। इन मान्यताओ की अनुगूज प्राय समस्त हिन्दी क्षेत्र मे प्रचलित विभिन्न लोक गीतो मे मिलती है।

कन्या का जन्म जहाँ सकट माना जाता रहा है। वही वध्यात्व नारीत्व का वैफल्य। नारीत्व की सफलता और पूर्णता मातृत्व मे ही होती है। वध्या की चिंता ग्लानि मानसिक उद्वेग और वध्यात्व-मोक्ष के लिए किये जाने वाले प्रयत्न—देवी देवताओ पवित्र तीर्थों[1] और नदियो आदि से मन्नत माँगन, टोना टोटका करन आदि—विषयक अनेक लोकगीत महिलाओ मे प्रचलित हैं। विभिन्न लेखो मे यहाँ ऐसे भाव वाले कई गीत उदाहृत हैं। नारी मानस के वे सटीक परिचायक हैं।

पुत्र-जन्म परिवार मे हर्षोल्लास-कारक होता है। पुत्र-जन्मोत्सव पर गाये जाने वाले गीतो म उनकी उत्तम अभिव्यक्ति मिलती है। वे सस्कार गीतों के अंगरूप होते हैं। प्रस्तुत पुस्तक मे सस्कार गीतो को स्थान नही मिला है। अत उक्त भाव वाले गीत इसमे अध्ययनीय नही बने हैं। यहाँ मैं इस पुस्तक मे विवेचित एक लोरी की ओर विशद तौर पर सकेत करना

१ तीर्थ भी लोक सस्कृति और सम्भवत अवैदिको की सस्कृति से मार्गीय सस्कृति में स्वीकृत हुआ है। तीर्थ (यानी नदी का तरण योग्य स्थान) वेद-बाह्य है, तभी वेद-विरोधी मत कभी तैर्थिक मत (कारण्ड-व्यूह, ११/६२) कहा जाता था। वैदिक सस्कृति का केन्द्र था यज्ञ-स्थान और अवैदिको का तीर्थ-स्थान।

वीर प्रसविणी माता की यह आकांक्षा स्वाभाविक है । राजस्थानी लोक संस्कृति में माता की यह आकांक्षा मार्गीय संस्कृति में स्वीकृति शाक्वरी व्रत का लोकरूपान्तरित रूप है । गोभिल गृह्यसूत्र (३/२/७६) के साक्ष्य से कहा जायेगा कि माता शिशु को दूध पिलाते समय मंगलात्मक आशीवचन का भी पान कराती है कि तुम शाक्वरी व्रत के पारगामी बनो—

यथा हि रौरुकि ब्राह्मण भवति । कुमाराण् हस्म मातरं पाययमाना आहु—शाक्वरीणां पुत्रका व्रत पारयिष्णवो भवतेति ।

यह मत कहीं रौरुकि ब्राह्मण (सम्प्रति अप्राप्य) से गृहीत हुआ है । शाक्वरी का स्पष्टीकरण ऐतरेय ब्राह्मण (५/७) में मिलता है, यथा—

यदि मात्को काप्रजापति सृष्ट्वेऽ सर्वमशक्नो-र्यदिद किं च तच्छाक्वर्योऽभवस्तच्छक्वरीणां शाक्वरीत्वम । अर्थात प्रजापति ने लोकों की सृष्टि कर उनकी प्रत्येक वस्तु को शक्ति समन्वित किया, यही शक्वरी शक्ति हुई । कौषीतिकी ब्राह्मण (२३/२)में उल्लिखित है कि इन्द्र ने वृत्रासुर का वध जिस शक्ति से किया था उसका नाम शाक्वरी है—

एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमशक्द्धन्तुम तद्यहाभिर्वृत्रमशक्द्धन्तु तस्माच्छाक्वर्य । अस्तु अकारण नहीं कि राजस्थानी माताएँ भी अपने शिशुओं को दूध पिलाते समय उन्हें शत्रुओं का विमर्दित करने का मांगल्य दान करती हैं। भारतीय इतिहास इसका साक्षी है कि राष्ट्र के घटक में शाक्वरी मंत्रों का महा निनाद गुंजित रहने पर ही राष्ट्र सुरक्षित रहता है। अन्यथा राष्ट्र आततायियों की बर्बरता का शिकार बन जाता है । अग्नि लक्षण वृषा सोम-लक्षण योषा को गर्भित करता है । सृष्टि की भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली में आहित गर्भ ही विराज है जो विराट भाव प्राप्त करता है । उसे जो यथाशक्ति आधान करती है, वही माता । अस्तु, विराट शक्ति के मूर्त्तरूप शिशु को माता के द्वारा शाक्वरी व्रत और मंत्र का मांगल्य दान निश्चय ही महनीय कार्य है ।

प्रस्तुत पुस्तक में सकलित विभिन्न लेखों में उद्धृत विवेचित गीतों पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि इनमें सास वधू, ननद भाभी सपत्नी, पति पत्नी, देवर भाभी देवरानी जेठानी आदि के कटु मधुर सम्बन्धों के अनेक सहज स्वाभाविक और मार्मिक चित्र आते हैं । साथ ही परिवार और समाज की आर्थिक सम्पन्नता विपन्नता का भी इनमें उत्तम परिचय

मिलता है। धार्मिक-सामाजिक रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार, टोने टोटके; अन्ध-विश्वास, लोकदेवता, लोकोत्सव (गणगौर आदि) का इनसे योग्य निदर्शन होता है।

गीतो मे व्यजित विभिन्न सम्बन्धों के अनुशीलन के पश्चात् यही सोचना सगत लगता है कि लोकगीतो की नारियाँ या तो काममूला हैं या कर्तव्यमूला। दोनो प्रवृतियों की व्यजना ही अध्ययनीय गीतो के प्राणतत्व हैं। अस्तु, यह मानना अकारण नही होगा कि लोकगीत काम और कर्म दोनो को ऊर्जा प्रदान करते है। नारी के 'अचेतन अन्तर्मोन' मे निहित ममता, स्नेह, प्यार, हर्ष, उल्लास, ईर्ष्या द्वेष, स्पर्द्धा, चिन्ता, ग्लानि आदि को इनमे बडी मार्मिक और लयात्मक अभिव्यक्ति मिली है। नारियो मे कोमलता, भावुकता और दुर्बलता होती है जबकि, पर निरोहता, कठोरता और समर्पण शीलता आदि परिवेशमूलक। लोकगीत उनके समस्त अनुभवालकारो की मिलीजुली अनुभूति और सवेदना को समग्रता मे वाणी प्रदान करते है। विवेच्य राजस्थानी लोकगीतो के लिए भी यही सत्य है। इन सभी बातो को ध्यान मे रखे बिना कोई भी अध्ययन सौन्दर्य तात्विक कसौटी पर खरा नही उतरेगा।

लोकगीत सदा एक से नही रहते। समयानुसार उनमे परिवर्तन-परिवर्धन सशोधन होता चलता है, वे बनते-मिटते रहते हैं। काल प्रवाह मे पुराने गीत भुला भी दिये जाते हैं और नये गीत उनके स्थानापन्न हो जाते हैं। इसमे विवेचित गीत भी इस निष्कर्ष को पुष्ट करते हैं। सम्यक अनुशीलन से विदित होता है कि इनमे अतिप्राचीन काल से प्रचलित गीत को शायद ही स्थान मिला है। असभव नही कि अति प्राचीन गीत या तो नष्ट हो गए हैं या उनका आमूल परिवर्तन-परिवर्द्धन हो गया है। अधिकाश गीतो के कथ्य उन्हे मध्यकालीन ही सिद्ध करते हैं। वीरपूजा एव वीर-सेनानियो ठाकुर कुशालसिंह सूरजमल चौहान, डूंगजी जवारजी, गोगाजी आदि-से सम्बन्धित गीत तो और भी बाद के, अपेक्षया अधिक नये हैं पर इससे गीतो का महत्व तनिक भी कम नही होता। वस्तुत ये गीत तो और भी महत्व के हैं। ये गीत अपने आप म इतिहास तो नही है पर क्षेत्रीय और राष्ट्रीय इतिहास लेखन के लिए इनम पर्याप्त सामग्री खोजी-पाई जा सकती है। इनम तथ्य और लोक कल्पना का अदभुत मिश्रण

है। ऐसे गीत न केवल राजस्थान वरन भारत के प्रायः अधिकांश क्षेत्रों में लोक कंठ में अभी सुरक्षित हैं। समय रहते यदि इनका संकलन नहीं कर लिया गया तो यह बहुमूल्य सम्पत्ति सदा के लिए समाप्त हो जायेगी। लेखक ने राजस्थान के कतिपय वीर राष्ट्रीय वीरों के सम्बन्ध में प्रचलित गीतों का यहाँ परिचय उपस्थित कर राष्ट्रीय हित का पोषण किया है। इनमें से कई वीर तो लोक देवता के रूप में राजस्थान में मान्य भी हो गये हैं। लोकगीत कल्पना प्रवण तो होते ही हैं। कल्पना के अतिरेक से परिचय कराने वाला इसमें एक स्वतंत्र लेख ही संकलित हुआ है। अपूर्ण इच्छा की पूर्ति में कल्पना कैसी महती भूमिका का निर्वाह करती है। यह गीतों से भाव से स्पष्ट है। पुस्तक में संकलित सभी लेख महत्व के हैं और राजस्थान गीतों को विविध कोणों से आस्वाद्य बनाने में समर्थ हैं।

राजस्थानी गीतों के प्रस्तुत अध्ययन की 'प्रारम्भिका' भर मुझे लिखनी थी। लोक देवता विघ्ननाशी गणेश के नमन-- 'अथ श्री गणेशायनम' से मैंने यहीं शुरू भी की थी, पर यह कुछ अधिक खिंच गयी। खैर, अब और नहीं। बात समाप्त करते हुए मैं मात्र इतना ही कहना चाहूँगा कि गँवई गीतों के प्रति अभिजात मन में एकत्र मल के क्षालनार्थ निर्भीक ग्रामीण सिंह ने राजस्थानी जग का जो प्रत्यक्ष अत सर्व, दर्शन किया है उसका एकांश ही इस पुस्तक में सिमट पाया है। और जो सिमट गया है, वह सार्थक है। राजस्थानी गीतों का यह अध्ययन अलग-अलग पत्रिकाओं में विभिन्न समयों में विषयानुसार प्रकाशित लेखों का संग्रह है। इसीलिए कई स्थलों पर पुनरुक्ति भी हो गयी है। विषयानुसारी स्वतंत्र लेख होने के कारण उनसे बचना लेखक के लिए शायद संभव भी नहीं था। यह जहाँ इसकी सीमा है वहीं शक्ति भी। लेखक के राजस्थानी गीतों के अध्ययन विषयक और संकलन भी पाठकों को शीघ्र ही सुलभ होंगे। इस शुभाशंसा के साथ ही प्रारम्भिका समाप्त होती है।

—कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'

चैत्र, शुक्ल सप्तमी, २०४४

पुरोवाक्

लोकगीत लोक-वेद हैं, पुराण हैं, सीमित अर्थों में वह इतिहास-भूगोल भी हैं। लोकगीतों में जीवन के विविध सदर्भों के वर्णन उपलब्ध होते हैं। लोक का हर्ष विषाद, रीति-रिवाज, परम्पराए एव प्रथाए सभी कुछ लोकगीतों मे देखा जा सकता है। व्यक्तिगत, पारिवारिक एव सामाजिक सबधो की जटिलता, आदर्श और यथार्थ की भी अभिव्यक्ति लोकगीतों में होती है। मानव मन कल्पनाशील है इसलिए लोकगीतो में लोक-मानस की ऊँची-उडान भी है।

राजस्थान मेरी मातृभूमि है और राजस्थानी मातृभाषा। राजस्थानी लोकगीतो के प्रति मेरी रुचि स्वाभाविक है। प्राय बाल्यकाल से ही लोक साहित्य मे मेरी गहरी रुचि रही है। प्रारभ में लोकगीत मेरे लिए मनोरजन के साधन मात्र थे। बाद मे साहित्य का विद्यार्थी होने के कारण मैंने इनका अध्ययन भी किया। उसी क्रम मे राजस्थानी लोकगीतो का सकलन भी होता गया। सकलन एव अध्ययन क्रम में मेरे मन-मस्तिष्क मे अनेक भाव एव विचार उठते रहे। वे ही मेरे विभिन्न लेखो में अभिव्यक्ति पाते रहे। विभिन्न पत्र पत्रिकाओ म वे आलेख यदा कदा प्रकाशित भी होते रहे। उनके प्रकाशन से मुझ और भी प्रेरणा प्राप्त होती रही। इस प्रकार सकलन, अध्ययन और लेखन प्रकाशन साथ साथ चलत रह। अधिकाश आलेख मैंने राजस्थान म रहत हुए ही तैयार किए थे। बाद म जीविकोपार्जन हेतु राजस्थान छोडकर मुझ मणिपुर आना पडा। इस स्थान परिवर्तन म राजस्थानी लोक साहित्य क अध्ययन पर विराम-सा लग गया। प्राय दो दशक पूर्व लिख गए आलेख बाद म भी छपत रहे। मैं उन सभी पत्रिकाओ के सम्पादको का आभारी हूँ जिन्होन उन्ह प्रकाशित किया और मुझे लिखने की प्रेरणा दी।

वे निबध ही अब पुस्तकाकार रूप मे आपके हाथो म हैं। सकलित निबधो मे राजस्थानी लोकगीतो मे व्यक्त कतिपय वर्ण्य विषयो पर

विचार हुए हैं। इससे राजस्थान की सस्कृति के अनेक पक्ष स्पष्ट होते हैं। विश्वास है कि लोकगीतो के अध्येताओ के लिए ये निबध अरुचिकर नही होगे। विवेचन मे कही कही तुलनात्मक दृष्टिकोण भी अपनाया गया है। यदि लोकगीतो क अध्ययन म यह पुस्तक किंचित सहायक हो सकी तो मैं अपन श्रम को सार्थक समझूंगा। पाठको को यत्र तत्र कुछ बातो की पुनरावृति प्रतीत होगी। इसका कारण यह है कि ये आलेख स्वतत्र रूप से भिन्न-भिन्न समय पर लिखे गए थे। यद्यपि पुनरावृति से बचन के लिए निबधो मे किंचित सस्कार किया गया है, किन्तु तब भी कुछ बातो की पुनरावृति रह जाना स्वाभाविक है

डा० देवराज तथा श्रद्धेय डा० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' ने पुस्तक को पाण्डुलिपि का अवलोकन कर अपने अमूल्य सुझावो से मुझे लाभान्वित किया है, अत, मैं आप दोना का आभारी हूँ। पुस्तक की पाडुलिपि श्री शभु सिंह, आर०ए०एस० न तैयार की थी, अत मैं उनके प्रति हार्दिक अभार प्रकट करता हूँ। श्री अरुण प्रकाश ढोंडियाल तथ श्री स्वरूप ढोंडियाल जी के कारण ही पुस्तक पाठको तक पहुँच रही है, वे साधुवाद के पात्र है।

काचीपुर इम्फाल
२७ अगस्त १९७६
(जन्माष्टमी)

डा० जगमल सिंह (ग्रामीण)

राजस्थानी लोक गीतो मे धार्मिक भावना

धर्म का अर्थ यो धारण करने से लिया जाता है। किन्तु हम यहा धर्म की दार्शनिक व्याख्या न करके राजस्थानी लोकगीतो मे चित्रित धार्मिक-भावना पर दृष्टिपात करने का प्रयत्न करेंगे। मानव अपने जीवन को बनाये रखने के लिए सदैव सघर्षशील रहा है। जहा तक मनुष्य की शक्ति की पहुच हुई, वहा तक उसने स्वय प्रकृति एव सामाजिक आचार-व्यवहार पर नियन्त्रण रखा, किन्तु जहा उसकी शक्ति ने जवाब दे दिया वही धार्मिक कर्म काड आरभ हुआ। सूर्य, चन्द्रमा, आदि गोचर प्राकृतिक उपकरणो को उसने देवता के रूप मे पूजा। जिन बातो का सबध इन गोचर-प्राकृतिक-उपकरणो से नही था, वहा उसने अगोचर देवताओ की कल्पना करली। इन्द्र, शीतला, भैरू आदि अनेक देवताओ को हम इसी श्रेणी मे रख सकते हैं।

मनुष्य ने सदैव अपनी शक्ति के जवाब देने पर किसी आलौकिक शक्ति की कल्पना की है। जो कार्य वह पूरा करने मे असमर्थ रहा वह उसने देवी-देवताओ पर छोड दिया। उसने मान लिया कि यह विधाता के, ईश्वर के हाथ है। धर्म का प्रारभिक रूप जो भी रहा हो आज लोक-जीवन मे धर्म का बडा अस्पष्ट रूप रह गया है। वह अपने मूल से इतना दूर चला आया है कि उसका वास्तविक रूप पहचान लेना दुष्कर कार्य है।

धर्म आज लोक-जीवन मे बहुदेव-वाद के रूप मे दिखाई देता है। धर्म का वास्तविक रूप सभवत यह नही रहा होगा जो आज है। सामाजिक व्यवस्था के लिए धर्म ने पाप एव पुण्य की व्यवस्था की होगी। किसी एक आलौकिक शक्ति की कल्पना की गयी होगी। किन्तु आज पाप पुण्य की भावना एव आलौकिक शक्तियो की कल्पना तथा उनके पूजन से अभीष्ट की सिद्धी ही धर्म बनकर रह गया है।

लोक-जीवन मे मृत व्यक्तियो की पूजा की जाती है। झूझार जी की पूजा भी इसी परम्परा में आती है। पूर्वजो के पूजने की परम्परा प्रचलित है। इनका रत जगा किया जाता है। रात्रि जागरण मे पूर्वजो अथवा पितरो के

गीत गाये जाते ह । जन मानस मे यह विश्वास प्रचलित है कि पुनर्जन्म होता है । ये पूर्वज पुन उसी घर मे जन्म लेते है । यथा···

धरम दवारे ओ रूडी पीपली जी
जठे पूरवज करे विचार
× ×_ ×
जास्यां-जास्यां शवर जी रे पेट
तो थारी बहू लाड्यां की खूला हुलस्या जी ।"[1]

यह गीत रात्रि जागरण मे गया जाता है । पीपल के नीचे खड़े पूर्वज विचार करते हैं···वे शवर जी की पत्नी के गर्भ मे जाने का निर्णय करते हैं और कहते हैं कि उनकी पत्नी की कोख मे जन्म लेकर हुलसेंगे ।·इस गीत मे मृत–व्यक्तियों के साथ ही पुजर्जन्म का भी उल्लेख है । यह हमारी प्राचीन मान्यता है । यह लोक मानस की प्रकल्पना (Jantacy Thinking) है ।

यह विश्वास भी प्रचलित है कि विभिन्न देवताओ की पूजा के परिणाम स्वरूप मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है । इसी को लोक मानस का आनुष्ठानिक विचारणा (Ritual Thinking) तत्व कहा गया है । एक गीत मे एक नारी के पति प्रात काल नौकरी पर जाने वाले है । उसने आज तक मोतियों से थाल भर भर कर सूर्य की पूजा की है अत वह सूर्य से यह प्रार्थना करती है कि वह थोड़ी देर से उदित हो । आज थोड़ी देर से उदित होकर उसकी पूजा का फल उसे प्रदान करें । यथा—

"सूरज थाने पूजती भर भर मोत्या थाल
छनेक मोड़ो तो ऊगज्यो म्हारा भवर चढे दरबार ।"[2]

इसी प्रकार अन्य कई गीतो मे भी मनोवांछित फल की प्राप्ति के लिए देवी-देवताओ की पूजा करने के उल्लेख मिलते हैं ।

जीवन निर्विघ्न चलता रहे इसके लिए मानव ने सभी महत्वपूर्ण अवसरों के आयोजन के नियम निर्धारित कर लिये हैं । वो नियम रूढियो एव परम्पराओ के रूप मे समाज मे विद्यमान हैं । जिस समय वे नियम निर्धारित

१ –राजस्थानी लोक गीत स० मोहन लाल व्यास शास्त्री पृ० २५
२ –राजस्थानी लोक गीत––पुरुषोत्तमलाल मेनारिया पृ० ४७

किये गये होंगें उस समय की परिस्थितिया भिन्न होगी। आज परिस्थितियाँ भिन्न हैं किन्तु वे नियम इतने रुढ़ हो गए हैं कि उन्हे कोई परिवर्तित करने का साहस भी नहीं करता।

लोक गीतो म वर्णित सभी देवता अपनी आलौकिकता छोडकर जन-जीवन म घुल मिल गए हैं। वे लोक जीवन की भावभूमि पर एक साधारण कृष्ण राधा सभी साधारण मानव रूप म वर्णित है। उनका आलौकिक रूप लोक गायक को ग्राह्य नहीं हो सका है। एक गीत मे वर्णित है कि महादेव को पार्वती हल चलाने के लिए कह रही है। भोले शिवजी अनक बहाने बनाते हैं किन्तु पार्वती उन्हें हल चलाने को विवश कर देती है। यहाँ शिव प्रलयकारी देवता नही एक साधारण कृषक हैं एव पार्वती जी साधारण कृषक महिला है, यथा-

> हल हाको महादव हल हाको ईसर
> दुनियाँ न धधे लगाय दीजो जी
> भोनोटो पारवती थें बोल नी जाणो
> हल कठाम् भगावस्यू जी
> बागा रा चदण कटावो महादेव
> जणा रा हल बणावस्या जी। हल हाको • • •[1]

और लोक-भूमि पर आकर शिव कृषि कार्य मे जुटाने को तैयार हैं। श्री विद्या निवास मिश्र का कथन इस सवध म द्रष्टव्य है- शिव राम कृष्ण, सीता कौशल्या या देवकी जैस चरित्र भी लोक-साहित्य के चौरस मैदान म उतरते ही अपनी गौरव गरिमा भूल जाते हैं और लोक बाना धारण करके, लोक मे ही मिल जाते हैं। यहा तक कि लोक का सुख दुख भी वे अपने ऊपर ओढने लगत हैं। उसी स लोक साहित्य की देव सृष्टि भी अमानवीय और अपार्थिव नही लगती।

एक गीत म वर्णित है कि गोरी जल भरने के लिए गई। वहा तालाब कुसुम-चन्दन स भरा था। वह पानी भरते समय हिचकिचा रही है। तालाब म आगे जाने स वह डरती है और तीर पर रहन पर घडा नहीं भर पाता है। दूसरी समस्या भी है--घडे को उठाया कैसे जाये। उठाकर सिर पर रखे तो सिर का आभूषण ममद भीज जाएगा। कध पर रखे तो गोद का बाल

---

१ -राजस्थानी लोक गीत स० रानी चडावत पृ० २६

गोपाल टर जाये। पार्वती इस सबध मे विचार कर रही थी कि महादेव आ पहुँचे। उन्होने पार्वती से व्यग किया कि इतना गर्व मत करो, पैर वढा कर घडा भर लो। दो-चार घडे और स्त्रियों को भी भरने दो और अपना घडा सिर पर रखलो। पार्वती उन्हे कहती है कि रहने दीजिए। आप अपने घोडे पर चढ कर जाईयेगा।[2]

गणेश जी को ऋद्धि-सिद्धि का दाता माना जाता है। अत प्रत्येक मागलिक पर्व पर इनकी पूजा पहले की जाती है। गणेश या विनायक या बन्याक नाम से राजस्थान मे पूजा जाता है। विवाह के समय विनायक से सबधित जो गीत गाया जाता है, उसी का यहा उल्लेख करना प्रर्याप्त होगा। विवाह के लग्न लिखवाने से विवाह के लिए आवश्यक सामाग्री क्रय करने तक के लिए गणेश को साथ चलने का आग्रह किया जाता है। ऐसा लगता है मानों गणेश भी विवाह मे एक साधारण बराती अथवा घराती हों —

"हालो विनायक, आया जोसी है हाला
चोखा-सा लगन लिखामा हे म्हारो विडद विनायक
चालो विनायक, आया वजाज रे हाला
चोखा-सा मालूडा मोलावसा, विडद विनायक।"[3]

---

२ ककु चनण भरी रे तलाई
झट गोरल पाण्यु न चाल्या
आगी जाऊ तो अब बोर्चुडरयू
पाछी रवु तो घुडल्यो नी ढूबे
माथे लेवू तो मैंमद भीजे
काधे लेवू तो कानूडो डग्पे
हसता खेलता ईसर आया
रो, रो गोरादे गरब न कीजें
पग देने घडा भर लीजें
दोय चार औरा रा भर दीजें
मचकाय माथे धर लीजे
रो, रो ईसर गरब न कीजे
पग देने घोडे चढ लीजै
चाबुक दे' र चलाय दीजै
राजस्थानी लोक गीत स० रानी चूडावत पु० २१

३ परम्परा-वर्ष १ अक १ पृ० १२७ पृ० ४७

इसी प्रकार कृष्ण से लोक-नायिका का दूध पीने के लिए तथा खीचड़ा (जो कि गेहूँ अथवा बाजरे को भीगो कर, कूट कर तथा उबालकर बनाया जाता है) खाने के लिए किया गया अनुरोध दृष्टव्य है। कितनी आत्मीयता छलकती है गीत के स्वरों में। आत्मीयता पूर्ण अनुरोध से किसी को यह संदेह हो ही नहीं सकता है कि कृष्ण देवता हैं, और नायिका भक्त।

"जीमो जीमो म्हारा मदन गोपाल करमा बाई रो खीचड़लो !
थारो दादो गयो पर गाँवड़ो, थारा दादा बिना नो आवड़े !
करमा बेटी जाट की, थने घी घालू भर बाटकी ।
भूखा मरता का विप जासी गाल, खाले खीचड़लो ! पीले दूधड़लो !
जीमो-जीमो म्हारा मदन गोपाल करमा बाई रो खीचड़लो।"[1]

यहा भक्त एवं भगवान में कोई अन्तर नहीं रह गया है। भगवान को भी लोक-जीवन की साधारण भूमि पर आना और लोक-जीवन का प्रिय-भोज्य-पदार्थ खीचड़ा खाना पड़ा है।

बहुदेव वाद भारतीय-धर्म की विशेषता है।

राजस्थान इसका अपवाद नहीं है। यहाँ भी विभिन्न देवी - देवताओं की पूजा का विधान है। भैरु जी, माता जी आदि कुछ ऐसे देवी देवता है जो सामिष भोग अथवा पूजा में विश्वास करते हैं। अत. इन्हें बकरा या भैंसा चढ़ाने की प्रथा रही है। यहा तक देखा गया है कि निरामिष भोजन करने वाले लोग भी इन देवताओं को पशु बलि चढ़ाते है। माता जी के एक गीत में कोई भक्त उन्हें बकरा एवं भैंसा चढ़ाने की बात कर रहा है –

थारा तो मदरिया में काई बाजे ए धोला में ला री घराणी !
थारा तो मदर में काई बाजे ए गढ़ दाँता री घराणी !

× × ×

बूटिया तो कानो रो बकरियो, काला तो माथा रो भैंसो चाढ़ू !
थारे तो शरणे आयोड़ो ने हीरा राखि ए ! धोला में लारी घराणी "[2]

माता जी ही नहीं भैरु जी भी बकरे की बलि लेकर भक्तों को

१ –सकलित
२ –सकलित

मनोवांछा पूर्ण करते हैं। बकरे के साथ उन्हें मदिरा भी नैवद्य में चढ़ानी पड़ती है। यथा –

"एक झडूल्या रे कारणै म्हारो जी बोलै म्हाने बोल।
सरतालो भैंरु अणवट नूतिया
भैंरु दूध पीजै न मदड़ो (मदिरा) छोड़ दे

× × ×

भैंरु बोकड़िया (बकरे का) रा देवू थानै भोग
सरतालो ओ भैंरु अणवट नूतिया।"[1]

बन्ध्या स्त्री पुत्र प्राप्ति की कामना से भैरव के पास गई है। उन्हें मदिरा एवं बकरे का भोग चढाने को वह तैयार है। वह भैंरु जी से प्रार्थना करती है कि उसे पुत्र रत्न दें।

यहु देववाद के साथ मूर्ति पूजा की भावना भी है। भैंरु जी माता जी शीतला देव जी, तेजा जी, पाबू जी इन सब की मूर्तियां मदिरो मे रहती हैं। इन मूर्तियो के दर्शन करन का जनता उत्सुक रहती है। होली के अवसर पर गाए जाने वाले एक गीत मे इस उत्सुक्ता का वर्णन दृष्टव्य है।

"चार भूजा रे मदरिये सोना रा पाट जड़िया रे!
बारे फको कूचिया खोलावो ताला रे!
दरसण करवा दो।
दनिया तो दरसण की भूखी रे, दरसण करवा दो!

लोक-गीतो मे रहस्यवादी प्रवृति भी धार्मिक-गीतो के अन्तगत देखने को मिलती है। आत्मा रूपी बिवाहिता वधू को मृत्यु रूपी प्रियतम लेने आ गये हैं। पथिक प्रियतम से बचाने के लिए आत्मा अपनी मा रूपी परम-आत्मा से प्रार्थना कर रही है, यथा–

म्हान अबके बचादे म्हारी माय, बटाऊडा आया लेबा ने!
बटाऊडो आयो रे! बटाऊडो, बटाऊडा रे!!
आठ कोठरी नौ दरवाजा, काया मदर माय
लुकती तो छिपती मू फिरूं रे, लुकती न छोड बर्ग नाय!

---

१ -मरु भारती - वष १२ अक ४ जनवरी १९६५

२ -सकलित

म्हाने अबके बचाद म्हारी माय, वटाऊड़ो आयो लेवा ने ।[1]

इन गीतों में भक्त आत्मा को प्रबुद्ध करने की भी चेष्टा करता है। ईश्वर भजन की ओर उन्मुख होन की प्रेरणा भी देता है। परन्तु वह भी रहस्यवादी ढग से ही–

बिणजारी ए हस-हस बोल बाता थारी रह जासी।

X X X

माला मणिया सूत का रे, माया रेशमी सूत
सूत विचारो क्या करे रे, कातण वाली कपूत
बालपण मे भज्यो नही रे मन मे राख्यो खाट[2]

जीवन की निस्सारता की ओर भी इन लोक गीतो मे सकेत किया गया है। धर्म करने की बात भी रहस्यावादी ढग से ही कही गई है। धार्मिक प्रवृति वाला व्यक्ति ही उस परमात्मा मिलन की सुन्दर साडी को ओढ सकेगा। किसी को अपने इस जीवन पर अभिमान नही करना चाहिए। क्योकि यह यौवन केवल दस दिन का है। आखिर एक दिन यह श्वास घुटन लगेगा और देह त्यागनी होगी। अन्तत देह भस्म की ढेरी बन जाएगी–

'ओढेला कोई भजव सुहागण
जणी रे नेण धरम के।
मन करो कोई मान गुमान
ई जोवन दन दसके।
घुटेला सास पडेला देही, आखर ढेर भसम के।"[3]

लोक-जीवन मे धर्म के सबध मे एक ओर अनेक रूढियाँ प्रचलित हैं तो दूसरी ओर जिस उदारता का परिचय दिया गया है वह देखते ही बनता है। यहा मुसलमानो के देवता 'पीर जी' से भी कोई वैमनस्य नही दिखाई देता है। हिन्दू धर्म के देवताओ को लेकर जहा अनेक गीत लोक गायक ने गाए हैं वही उमन पीर जी के सबध मे भी उसी श्रद्धा से, उसी विनय से और उसी भक्ति भावना से गीत गाए हैं। यहां केवल एक गीत उद्धृत किया जा रहा है।

---

१ –सकलित

२ –सकलित

३ –राजस्थानी लोक गीत (भाग ६) स० मोहनलाल व्यास शास्त्री, पृ० ७६

"पाचू हीरा का हाथ मे गुलाल की छडी ।
पीरा दो न रुजगार मू तो काल की खडी ।।
सातूं पीरा का हाथ मे गुलाल की छडी ।
पीरा दो न रुजगार बदी रात की खडी ।।"[1]

भारतीय-जन-जीवन मे विदेशी आक्रान्ताओ की सभ्यता, सस्कृति एव धर्म को आत्म-सात करने की बात बहुत जोर-शोर से कही तथा सुनी जाती रही है। यहां जिस तरह मुसलमान धर्म के देवताओ को आत्मसात किया गया है, वह दर्शनीय है।

लोक गीतो मे चित्रित धर्म ब्रह्मतत्व आदि का कोई दर्शनिक विवेचन नही मिलता है। यहां धर्म का वही रूप ग्रहण किया गया है जिसे लोक मानस ने आत्मसात कर लिया है। इस सबध मे प्रो॰ इन्दु प्रकाश पाण्डेय ने लिखा है– "यद्यपि तात्विक परब्रह्म की कल्पना का प्रभाव यहाँ नही मिलेगा परन्तु विरोधी सम्प्रदायो के इष्टदेवो का सुन्दर समन्वय लोक-भावना मे ही मिलेगा। किसी का भी ईश्वर उनका अपना है और उसका कोई भी रूप क्यो न हो, हमारे ग्राम समाज को, विशेश रूप से स्त्रियो को स्वीकार है। जहा एक ओर देवी–देवताओ की विभिन्नता तथा अनेकता मे, अपरिसीम अस्तव्यस्तता मिलेगी, वही उस अनेकता तथा अस्तव्यस्तता मे एक प्रगाढ, अटूट तथा अखण्ड श्रद्धा, आस्था' का भाव मिलेगा जो शायद *अद्वैतवादी साधक के लिए आकाश कुसुम हो।"*[2]

भाग्य वाद पर अटूट आस्था एव विश्वास लोक–गायक के मन मे रही है। लोक गायक का ईश्वर उसी की मौलिक कल्पना है। वह स्वय द्वारा कल्पित ईश्वर मे ही विश्वास करता है। उसने जीवन मे धर्म का जो रूप अपनाया है, वह किसी धार्मिक-ग्रन्थ अथवा पुराण से ग्रहण नही किया गया है। वह अपने राम से बडे घनिष्ट एव निकट सबध रखता है। वह अपने राम से उन अनिवार्य वस्तुओ को, जिनका उसके जीवन मे अभाव है, कितनी स्पष्ट माग करता है, यथा —

"म्हारा राम रघुनाथ इतरा वर तो म्हाने दीजो
नील त उठ जाडू दोनू हाथ।

१–सकलित
२–अवधी लोक गीत एव परम्परा पृ॰ ६६

आपणो तो खेत दीज्यो बीचं मे दीज्यो नाडो
घर वाली ने छोरो दीज्यो भैंस लावै पाडी।" [1]

उसे यह विश्वास है कि राम ये वस्तुए उसे दे देंगे। देवी-देवताओ से इसीलिए उसने कही पुत्र मागा है तो कही रोजगार।

एक गीत मे पत्नी अपने पति से कहती है कि रोटी को मत बाधो क्योकि पुन वह प्राप्त कैसे होगी, कौन रोटी देगा। किन्तु पति को भाग्य म अटल विश्वास है। अत वह कह देता है कि रोटी राम देंगे, भाग्य पर विश्वास रखना चाहिए। यथा–

बोला कवर जी रोटी ने मत बाधो रोटी कुण देला ?
जा जा गेलो भाग भरोसे, रोटी राम देला।[2]

लोक गीतो मे भाग्यवादिता के पोषक अनेक उदाहरण सहजता से प्राप्त हो जाते हैं। लोक-जीवन मे यह दृढ धारणा है कि विधाता के अक प्रबल है। उन्हें कोई मिटा नही सकता। विधि के इन अको के लिए लोकगीतो में 'लेख' तथा 'करम' शब्द के प्रयोग हुए है। सुख-दुख एव वर्ग-वैषम्य आदि के लिए भाग्य का ही कारण माना गया है। एक गीत मे जब बेटी अपने पिता से अपने ससुराल के दुखो का वर्णन करती है तो पिता उससे यह कह कर सतोष देता है कि हे मेरी अमुक पुत्री मैं क्या करूं ? तेरे ऐसे ही लेख विधाता ने लिख दिये। यथा—

मोटी मक्की को पीसणो, सासू धड़ियां इ तोली ए।
मरण-मरण आवे नीदडली, घट्टी बैरण वेगी ए।
ससुरा जी देवे ओलवा, सासूजी देवे गाल।
बाबल सुणता तो रीझियो ओ।
पू काई करू (अमुक)...बेटी! थारा लेख लिख्योडा ओ राम।[3]

इस प्रकार विधि के अको को प्रबल माना गया है।

कर्म के लेख पढ सकना असभव है। इस बात को अभिव्यक्त करने के लिए लोक-गायक ने अनेक उपमानो के प्रयोग किये है। कागज को पढा जा सकता है, परन्तु कर्म को नही। वट वक्ष को काटा जा सकता है, किन्तु

१– सकलित
२– सकलित

पीपल को कैसे काटे ? कोई छोटा-सा तालाब हो तो उसकी थाह ले भी ली जाये, किन्तु सागर की थाह कोई कैसे ले सकता है। कर्म के लेखों को पढ़ सकना असंभव है—इस बात को बल-पूर्वक कहने के लिए ही इतने उपमानों का आयोजन लोक गायक ने किया है। उक्त गीत की अंतिम पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं –

> कागद वे तो बाच लू करम बाचियो न जाय
> बडलो वे तो काट लू पीपल काट्यो न जाय
> नाडूलियो वे तो थाग लू, समदर थागियो न जाय ।[1]

इस विचार की अभिव्यक्ति अन्य गीतों में भी देखने को मिलती है। एक वियोगिनी की उक्ति है –

> *पीव जी बसे दिसावरा हमें देइ छिटकाय ।*
> *कागद हो तो बांच ल्यू करम न बांच्यो जाय ।।*[2]
>
> *वियोगिनी की ही दूसरी उक्ति भी द्रष्टव्य है —*
>
> *टावर व्हे तो पिया राखलू जी जोवन राख्यो न जाय ।*
> *अब घर आय जावो फूल गुलाब रा जी*
> *कागद व्हे तो पिया बाचलू करम नी बाच्यो जाय ।*[3]

डा० कृष्ण देव उपाध्याय ने एक भोजपुरी लोकगीत की दो पंक्तियाँ उद्धृत की है जिनमे भाग्य ने अक प्रबल माने गये हैं--

> कागज होइ राजा फारि के फेकों ।
> कर्म न मेटो जाय हो राम ।[4]

लोकगीतो मे वर्णित धर्म की चर्चा के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुच जाते हैं कि लोक-धर्म का कोई स्पष्ट रूप नही है। दार्शनिक चिन्तन की भांति लोक गायक के सम्मुख धर्म का कोई एक निश्चित स्वरूप नही है। देवी देवता लोकगीतो म आलौकिक न रह कर साधारण जन बन जाते हैं। लोक जीवन मे मूर्ति पूजा के प्रति विश्वास है। हिन्दू एव मुस्लिम

---

१. संकलित

२ राजस्थानी लोकगीत - स डा० दाधीच, पृ० १२०-१२१

३ *राजस्थानी लोकगीत- स रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत, पृ० ४८*

४ भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन पृ० ३१४

धर्म का अद्भुत सम्मिलन लोकगीतो मे प्राप्त है। जन-मानस का भाग्य में अखण्ड विश्वास है। देवी देवताओ को विघ्नकारी एव विघ्न निवारण-कर्त्ता दोनो माना जाता है, साथ ही भेंट पूजा द्वारा देवताओ को प्रसन्न भी किया जाता है जिससे मनोवाछाए पूर्ण हो सकें। बहु देव वाद की भावना जन मानस मे स्थिर है। इसके लिए प्रो० श्रीधर मिश्र का कथन देखिए— "वे वृक्षो पशुओ, खड्हरो, पत्थरो तथा घूरो की पूजा भी उसी श्रद्धा एव भक्ति से करते है जिस प्रकार राम, कृष्ण, सूर्य, शकर या शीतला की करते है।"[1] □

१ भोजपुरी लोकगीता के विविध रूप पृ० ६०

लोकगीतों में कल्पना

लोकगीतों में यथार्थ चित्रण के साथ ही कल्पना का अतिरेक भी मिलता है। लोकगायक कभी-कभी कल्पना के पर लगाकर सोने-चाँदी, हीरे-मोती और जवाहरातों तक और कभी-कभी महलों में भी घूम आता है। किन्तु उसके साथ होता वही है–'उडि जहाज को पछी पुनि जहाज पै आवे।' उड़ता अवश्य है, किन्तु लौटकर अन्तत यथार्थ की भूमि पर ही आ जाता है। परन्तु जब भी उड़ा है आकाश की ऊँचाई छूकर ही लौटता है।

एक कहानी याद आती है। कुछ बच्चे मिट्टी से खेल रहे थे। वे गीली मिट्टी के लड्डू बनाकर कह रहे थे–ये तल के लड्डू हैं। कोई व्यक्ति उनके पास होकर निकला। उसने बच्चों से कहा कि जब मन के ही लड्डू बना रहे हो तो घी के क्यों नहीं बनाते हो? कहावत भी है—मन के लड्डू फीके तो खोड क्यों?' लोक गीतों में कल्पना के अतिरेक का कारण हमारे विचार से यही है। जो यथार्थ-जीवन में उपलब्ध नहीं, उसे क्यों न कल्पना लोक में प्राप्त किया जाए? जब कोई कल्पना में ही किसी वस्तु को देखने जाये तो उसे सर्वोत्तम रूप में क्यों न देखे? कल्पना में कृपणता कोई क्या करेगा? लोक गायक के मनमें यही भावना काम करती रहती है। इसीलिए वह कल्पना की इतनी ऊंची उडान भरता है। यह लोक साहित्य का नहीं लोक-साहित्यकार का मनोविज्ञान है।

लोकगीतों में कल्पना का अतिरेक सर्वत्र दर्शन को मिलता है। यदि कहीं सोने का प्रसग आता है तो सोना भी सवा मन ही आयगा, कम नहीं। 'ईसर जी' नामक राजस्थानी गीत में गौरी से कहा जाता है कि तुम्हारे लिए सोने जैसा वर लाए। वह 'पडले' (विवाह के समय वर की ओर से वधू के लिए लाई जाने वाली सामग्री) में तुम्हारे लिए सवा मन सोना, सवा मन चादी, सवा मन मोती, सवा मन सिन्दूर एवं सवा मन रोली लायगा—

'कौ तो गौरी द थारे आदित वर न वरा
ओ देवी सवा मण सोनो वर रे पडलें चढ

लोकगीतों में कल्पना

लोकगीतों में यथार्थ-चित्रण के साथ ही कल्पना का अतिरेक भी मिलता है। लोकगायक कभी-कभी कल्पना के पंख लगाकर सोने-चाँदी, हीरे-मोती और जवाहरातों तक और कभी-कभी महलों में भी घूम आता है। किन्तु उसके साथ होता वही है—'उडि जहाज को पछी पुनि जहाज पे आवे।' उड़ता अवश्य है, किन्तु लौटकर अन्ततः यथार्थ की भूमि पर ही आ जाता है। परन्तु जब भी उड़ा है, आकाश की ऊँचाई छूकर ही लौटता है।

एक कहानी याद आती है। कुछ बच्चे मिट्टी से खेल रहे थे। वे गीली मिट्टी के लड्डू बनाकर कह रहे थे—ये तेल के लड्डू हैं। कोई व्यक्ति उनके पास होकर निकला। उसने बच्चों से कहा कि जब मन के ही लड्डू बना रहे हो तो घी के क्यों नहीं बनाते हो? कहावत भी है—'मन के लड्डू फीके तो थोड़े क्यों?' लोक गीतों में कल्पना के अतिरेक का कारण हमारे विचार से यही है। जो यथार्थ-जीवन में उपलब्ध नहीं, उसे क्यों न कल्पना लोक में प्राप्त किया जाए? जब कोई कल्पना में ही किसी वस्तु को देखने जाये तो उसे सर्वोत्तम रूप में क्यों न देखे? कल्पना में कृपणता कोई क्यों करेगा? लोक गायक के मनमें यही भावना काम करती रहती है। इसीलिए वह कल्पना की इतनी ऊंची उड़ान भरता है। यह लोक साहित्य का नहीं, लोक-साहित्यकार का मनोविज्ञान है।

लोकगीतों में कल्पना का अतिरेक सर्वत्र देखने को मिलता है। यदि कहीं सोने का प्रसग आता है तो सोना भी सवा मन ही आयेगा, कम नहीं। 'ईसर जी' नामक राजस्थानी गीत में गौरी से कहा जाता है कि तुम्हारे लिए सोने जैसा वर लाए। वह 'पडले' (विवाह के समय वर की ओर से वधू के लिए लाई जाने वाली सामग्री) में तुम्हारे लिए सवा मन सोना, सवा मन चांदी, सवा मन मोती, सवा मन सिन्दूर एव सवा मन रोली लायेगा—

> "को तो गोरी दे थारे मदित वर ने वरा
> ओ देवी सवा मण सोनो वर रे पड़लै चढ़ै

ओ देवी सवा मण मोती बर रे पड़ले चढ़े

X X X

ओ देवी सवा मण सिंदूर बर रे पड़ले चढ़े

X X X

[illegible]

[illegible] ... का है
तयों से जड़ो उसकी जीन है। यथा;

"मूंझार जी घोड़ो तो सोवें नो जनों
मारयो चढ़ियो पलाण।
झूंझार जी बाग पकड़ घोड़े चढ़िया।"[2]

[illegible]

... मैंने सोने की थाली में भोजन परोसा है, किन्तु अभी तक प्रियत
... नहीं आये। सावन की वर्षा होने लगी है। मेंढक बोल रहे हैं। पेड़ों
... डालियों पर मोर-पपीहे भी बोल रहे हैं। वे अभी तक घर नहीं आये, सा...
... वर्षा होने लगी है —

"सोने की थारी में जेवना परोसलों,
सखी हो, सइयाँ घर ना अइले,
सावन बरिसे लगलना।
दादुर बोले, मोर पपिहा डारी-डारी ना,
सखी हो, सइयाँ घर ना अइले।

... सोने की था...
... ही भोजन परोसा है। एक राजस्थानी गीत में वियोगिनी अपने प्रिय...

... राजस्थानी लोक गीत, रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत, पृ० २४
... वही, पृ० ...

लोकगीतो मे कल्पना

लोकगीता मे यथार्थ-चित्रण के साथ ही कल्पना का अतिरेक भी मिलता है। लोकगायक कभी-कभी कल्पना के पख लगाकर सोन-चाँदी, हीरे-मोती और जवाहरातो तक और कभी-कभी महलो म भी घूम आता है। किन्तु उसके साथ होता वही है–'उडि जहाज को पछी पुनि जहाज पे आवे।' उड़ता अवश्य है, किन्तु लौटकर अन्तत यथार्थ की भूमि पर ही आ जाता है। परन्तु जब भी उडा है आकाश की ऊँचाई छूकर ही लौटता है।

एक कहानी याद आती है। कुछ बच्चे मिट्टी स खल रहे थे। वे गीली मिट्टी के लड्डू बनाकर कह रह थे–य तल क लड्डू हैं। कोई व्यक्ति उनके पास होकर निकला। उसने बच्चो से कहा कि जब मन क ही लड्डू बना रहे हो तो घी के क्यो नही बनाते हो? कहावत भी है— मन के लड्डू फीके तो थोड क्यो?' लोक गीतो म कल्पना के अतिरेक का कारण हमारे विचार स यही है। जो यथार्थ-जीवन म उपलब्ध नही उस क्या न कल्पना लोक म प्राप्त किया जाए? जब कोई कल्पना म ही किसी वस्तु को देखन जाये तो उसे सर्वोत्तम रूप म क्या न देखे? कल्पना म कृपणता कोई क्या करेगा? लोक गायक के मनमे यही भावना काम करती रहती है। इसीलिए वह कल्पना की इतनी ऊची उडान भरता है। यह लोक साहित्य का नही लोक-साहित्यकार का मनोविज्ञान है।

लोकगीता म कल्पना का अतिरक सवत्र देखन का मिलता है। यदि कही सान का प्रसग आता है तो सोना भी सवा मन ही आयगा कम नही। 'ईसर जी' नामक राजस्थानी गीत म गौरी स कहा जाता है कि तुम्हारे लिए सोने जैसा वर लाए। वह 'पडले' (विवाह क समय वर की ओर स वधू क लिए लाइ जाने वाली सामग्री) म तुम्हारे लिए सवा मन सोना सवा मन चादी, सवा मन मोती, सवा मन सिन्दूर एव सवा मन रोली लायेगा—

'जो ता गोरी द थारे आदित वर न वरा
ओ दवी सवा मण सानो वर रे पडलं चढ़े

ओ देवी सवा मण रूपा वर रे पडल चढ

X X X

ओ देवी सवा मण मोती वर रे पडल चढ

X X X

ओ देवी सवा मण सिंदूर वर रे पडले चढ

X X X

ओ देवी सवा मण राली वर रे पडल चढ। [1]

एक अ य गीत झुझारजी म झुझार जी का घाडा नौ लाख का है। मोतिया से जडी उसकी जीन है। यथा

झुझार जी घोडो तो साव नो लखो
मोत्या जडियो पलाण।
झुझार जी बाग पकड घोड चढिया।

लोक गायक के कल्पना लोक मे सोना चादी मातिया का बाहुल्य है।

भाजपुरी लोकगीत कजली म एक वियोगिनी कह रही है कि हे सखि! मैने सोने की थाली म भाजन परोसा है किन्तु अभी तक प्रियतम नही आये। सावन की वर्षा होन लगी है। मेढक बाल रह है। पेडा की डालियो पर मोर पपीहे भी बोल रहे है। वे अभी तक घर नही आय सावन की वर्षा होन लगी है—

सोने की थारी म जवना परासलो
सखी हो सइया घर ना अइले
सावन बरिस लगलेना।

दादुर बोले मार पपिहा डारी डारी ना
सखी हो सइया घर ना अइल
सावन बरिसे लगलेना। [3]

यहां भी विरहिनी न अपन प्रवासी प्रियतम क लिए सोन की थाली म ही भोजन परोसा है। एक राजस्थानी गीत म वियोगिनी अपन प्रियतम

१ राजस्थानी लोक गीत रानी लक्ष्मी कुमारी चूडावत, पृ० २४
२ वही पृ० १५
३ भाजपुरी लोकगीतो क विविध रूप, श्रीधर मिश्र पृ० ६

स अनुराध करती है रि तुम घर लौट आओ, क्योंकि तुम्हारा नौ लाख का घोडा और जीन बरसात म भीग रह है—

घोडा तो भीज पिया नालखाजी भीज बनाती जाण ।
अब घर आय जावा बरखा रुत मूब रही जी ॥[1]

घोडा भी लोर गीता म नौ लाख स कम का क्यों हो ? एक अन्य घूघरी (उबल चन या मक्री आदि) गीत म घूघरी को बड यत्न स पकाया जा रहा है —

तांबा करा तोलडी चढाय
म्हारे राय रूपा री ढाकणी
चु नी वरणी लापसी रधाय
म्हारे मोत्या वरणी घूघरी ।'

घूघरी[3] पकान क लिए तोलडी (पकान का बर्तन, दगची) तांब की है। इस दगची पर ढक्कन चांदी का लगा है। लाल रग का लपसी और मोती के रग की घूघरी बनाई। इन पक्तियो म भी कल्पना की उडान है।

एक और गीत म कस्तूरी तोली जा रही है। कस्तूरी तोलन क लिए सान क डड वाली तराजू है और पलड है चांदी क—

सोना रा डाड्या राज रूपा रा चला
थू झुकती तो तोल गधी किस्तूरी जी ।'[4]

एव विवाह गीत म उस दिन उदय हान वाल सूर्य को सोन का कहा है। भला उसक बिना विवाह कैस होता ? उसी म आग कहा गया है कि मोतिया स निर्मित तोरण'[5] जगमगा रहा है—

आज तो सोना रो सूरज, उग्यो रे लाल !

---

१ राजस्थानी लोक गीत रानी लक्ष्मी कुमारी चूडावत, पृ० ४६
२ वही पृ० ८=
३ बाजरा गहू चना मक्री आदि को उबाला जाता है और इन उबल हुए दानो को घूघरी कहत है। मगल पर्वों पर घूघरी बाटकर निमत्रण देत है।
४ राजस्थानी लोक गीत पुरुषोत्तम मनारिया पृ० १६ ।
५ राजस्थानी लोक गीत पुरुषोत्तम मेनारिया, पृ० १६ ।

मोती रा तोरण जगमग्या के लाल ।[1]

ऐसे गीतो पर विचार करते हुए डा० कृष्ण देव उपाध्याय ने लिखा है—'गीतों और कथाओ म सोने की थाली मे भोजन करन और आभूषणो की प्रचुरता का वर्णन उपलब्ध होता है ।' इसी सम्बन्ध म वे आगे लिखते हैं— 'गहनो की जो लम्बी सूची गीतों म मिलती है उससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज बडा समृद्ध था । जनता की आर्थिक-स्थिति अच्छी थी और सभी लोग धन-धान्य से पूर्ण थे ।'[2] चाहे तत्कालीन समाज समृद्ध न भी रहा हो, चाहे वहा घोर निर्धनता ही रही हो, किन्तु इतना हम स्वीकार करना ही होगा कि लोक-काव्य जगत के कल्पना लोक में विभिन्न आभूषणों, सोने की थाली, मोतियो से जडे तोरण व घोडो की जीनो का कोई अभाव नही लगता । हीरे, मोती, जवाहरात तथा सोना चादी, लोक-काव्य जगत म प्रस्तर-कणिकाओ के समान बिखरे पडे हैं । नायिका झूला भी झूलती है तो उसकी डोर रेशम से ही बनी होगी । लोक नायिका झूले मे झूल ही रही है तो अपने माननीय देवताओं को कैसे विस्मृत कर दे । इसी झूले में उसके सब मान्य देवता भी झूलते हैं —

> वन खण्ड म हिन्दो बदायो रेशम की डोर जी
> राणी रेणादे हीदण बैठ्या धरती न झेले भार जी
> सूरज जी ले ललकारो दीधो, ओ हिन्दो गयो गिरनारजी ।[3]

डाक्टर कृष्णदेव उपाध्याय का कथन कि तत्कालीन समाज बडा समृद्ध था और गहनो की लम्बी सूची उसी की ओर सकेत है । यह बात असगत सी लगती है । यह तो लोक काव्यकार की कल्पना की उडान है । अन्यथा यह भी स्वीकार करना होगा कि ये देवता भी कभी लौकिक झूले पर झूलने आते होगे । गहनों की सूची आदि सभी बाते लोक-गायक की कल्पना उडान है । रेशम की डोर, धरती का भार न सहना, झूले का गिरनार मे जाना मात्र अतिशयोक्ति है । स्वर्ग के देवताओ का धरती के साधारण झूले पर झूलना भी कल्पना ही है ।

---

१ वधू के घर वर विवाह के निमित्त प्रवेश करता है तो द्वार पर एक काष्ट निर्मित सुन्दर कला कृति से स्वागत करते है । वर अपने हाथ की तलवार से प्रहार कर आगे बढता है ।

२ लोक साहित्य की भूमिका, डा० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० २५२

३ राजस्थान के लोकगीत, ठाकुर रामसिंह आदि, पृ० ६०

इसी प्रकार का एक अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन भोजपुरी लोक-गीतो मे भी है। राधा और कृष्ण झूला झूल रहे है। उसमे भी वही रेशम की डोर सोने का पालना बना है। यथा---

झूला - झूल राधिका प्यारी,
सग म कृष्ण मुरारी। टेक।

X X

सोन का पालना रेशम की डोरी
चनन क गदिदया ना ।। टक ।।[1]

एक राजस्थानी लोक गीत म सोन के दीपक और रेशम की बाती का उल्लेख हुआ है---

सोन रा म्हे दिवलो घडास्यां,
रेशम बाट बटास्यां जी।
चार बाट चौमुख दीवो
घी सू म्हे पुखास्यां जी।[2]

दीपक सोने का बत्ती रेशम की और जलता है घी। सोना, रेशम और घी मानो टक मर की वस्तुए है। इसी प्रकार जब भी लोक नायिका अक्षत आदि देती है तो चाहे वह ज्यार बाजरे क दाने ही क्यो न हो कहा जाएगा कि मोतियो का थाल भर कर दिया गया---

हल चल हुई हलकार,
मेवाडो रा साथ मैं रे लोल,
भर लो मोतिडो सू थाल,
सुन्दर गोरी म्हारे मोरतियो पूछाव।[3]

मेवाडी सरदारा की सेना म हलचल मच गई है, प्रस्थान के नक्कारे बज रहे हैं। सुन्दरी! मोतियो से थाल भरकर, पडित जी के सामने रख, मुहूर्त पूछने लगती है। एक घुडला त्योहार गीत म कन्याए तेल क स्थान

१ भोजपुरी ग्राम गीत (भाग २), डा॰ कृष्णदेव उपाध्याय, पृ॰ १७६
२ राजस्थानी लोकगीत, स॰ श्री पुरुषोत्तम मेनारिया पृ॰ ४२
३. वही पृ॰ ४२

पर घी एव मोतियों के अक्षत मागती है । भले हो उन्हे तेल भी न मिले । यथा—

मुवागण वारे आव, तेल वले घी लाव ।

मोतयारा आखा लाव, पीहर रो पीलो लाव ।।[1]

'हल हांको महादेव' गीत मे भी कल्पना का अतिरेक है । इस गीत मे चन्दन के बागो को काटकर हल बनाया जा रहा है । जुए के लिए बाग के आम और इमली ही कटेगे । जैसे बबूल-कीकर, नीम आदि सभी पेडो का अभाव हो । फिर प्रश्न होता है कि बीज कहा से मगाया जाए ? तो कहा जाता है कि समुद्र से मोती ले आओ । यथा —

हल हांको महादेव, हल हांको ईसर

× × ×

तो हल कठास्यू मगावस्या जी

बागां रा चदण कटावो महादेव

× × ×

तो जूडो कठासू मगावस्या जी

बागा रा आम्बा आमली कटावो भाला महादेव ।[2]

एक अन्य गीतांश मे मोतियो की लडीं और झडो से तोरण बनाया गया है ।

म्हारा बाई सा सात भाईयो री छै जोड,

मोतियो री लड़-झड तोरण मारिया ।[3]

'तम्बाखू' गीत मे भी कल्पना की उडान दर्शनीय है । एक नारी कहती है कि हे प्रियतम ! आप हाथी पर सवार हैं और आपके पीछे-पीछे रथ मे बैठकर सौत आ रही है ।

हे जोडी के राजा । आपका हुक्का रत्नो से जडा दूं । चाहे वास्तविक जीवन मे हाथी एव रथ की सवारी दुर्लभ ही क्यो न हो, हुक्का रत्नो और मोतियो से जडा हुआ न होकर मिट्टी का ही बना हो, उसम सबसे निम्न कोटि की तम्बाकू ही क्यों न जलती हो, किन्तु कहने को उसम लौंग-इलायची जल रहे है म ?

१- राजस्थान के त्योहार गीत (अप्रकाशित), जगमल सिंह ग्रामीण, गीत सख्या ३

२- *राजस्थान के लोक गीत, रानी लक्ष्मी कुमारी चूडावत,* पृ० २७

३ वही, पृ० १२७

आप हस्थिया असवार, लारै रथ सोक रो जी राज
जाडी रा राजा हुक्को रतन जडाय, चिलम जगे मातियाँ जी
लूगा री धुई रे धराव डोढा रा चिमभिया जी राज ।'[1]

इसी प्रकार जब कभी हार देने का प्रसग आता है तो हार नौ लाख से कभी कम नही होता ।

बाई ता माड्यो रूमणो ग लऊ गला रा हार
यू क्यु माड्यो बाई रूमणो ग देस्या नौ सर हार ।'[2]

इसी प्रकार का उदाहरण श्री फणीश्वर नाथ रेणु न भी परती परिकथा म लिया है। उसमें मोतियो के हार की चर्चा है और चुनरी स भी मोती बरस रहे है –

करिबे सोनहो सिगार गले मोतियर हार
केशिया धरती लौटाय चूनरी माती बरसाय (पृ॰ १६५)

जहा सोन चादी मोती रत्नो की इन लाक गीतो म इतनी प्रचुरता है वही रेशम का भी अभाव नही है। एक गीत म गर्भवती स्त्री के बालक होने वाला है। वह पति को बाहर जान क लिए सीध नही कहती। वह कहती है कि आप बाहर जाकर पतग उडाओ। पति उसक सकेत को समझ नही पाता और अपनी तुलना रेशम की डोर से तथा पत्नी की पतग स करता है। वह कहता है कि हम तो महल म ही पतग उडायेंग। चाहे पति पत्नी झोपडी में ही क्यो न रहने वाले हो किन्तु लोकगीतो म पतग महल म ही उड़ग। वह भी रेशम की डोर से–

थे गुड्डी गोरी म्हे रेशम डोर
महला म गुड्डी उडावस्यां जी राज । [3]

एक भोजपुरी गीत म सोन का पालना रेशम की डोरी स बधा है–
"सोने का पालना रेशम की डोरी
चनन के गछिया ना । [4]

---

१ राजस्थान क लोक गीत–रानी लक्ष्मी कुमारी चूडावत पृ॰ १३१
२ वही पृ॰ १४०
३ राजस्थान के लोक गीत रानी लक्ष्मी कुमारी चूडावत पृ॰ ७५
४- भोजपुरी लाक साहित्य का अध्ययन डा कृष्ण देव उपाध्याय पृ॰ १८६

रेशम की डोर का ऊपर झूले के गीतो में भी विवेचन किया गया है। राजस्थानी लोक-गीत बनडी मे तम्बू ही रेशम की डोरियो से बाध गए हैं। तम्बूडा रे रेशम डोरी हुस्यिडा सिणगारो।[1] यही रेशम की डोर प्रलोभन बनती हैं ढोला के ऊट के लिए। मालवणी मारवण स मिलने के लिए जाने वाले ढोला को रोक नही पाती है तो ऊट को लगडा होकर बठने के लिए कहती है और प्रलोभन देती है कि उसके गले म रेशम डोर बाधगी। भले ही ऊट के गल में भड की मोटी ऊन की रस्सी ही बाधी जाती रही हो परन्तु कल्पना लोक मे तो रेशम ही बधगा –

क गल घाल घूघरा के गल घालू रेशम डोर
तू करवा म्हारे बाप को रे लगडो होकर बठ।[2]

लोक गायक के कल्पना लोक म जिस प्रकार रेशमी डोर मोती रत्न एव सोना चाँदी का कोई अभाव नही उसी प्रकार महल-मालिये, रग महल किले का भी इन गीतो म बहुतायत स वणन मिलता है। चाहे लोक नायिका वास्तविक जगत में किसी टूट फूट घर या झोपड म ही क्यो न रहती हो परन्तु कल्पना में वह कृपणता नही करती है। कल्पना लोक म तो रग महला ऊँचे-ऊचे भवनो का कोई अभाव नही है। यथा–

जी वो म्हे थान बूझा गढा का मोटा रावजी
मारू जी वे कट गया छा सारी रात
रूई कठ लगी जी भवर जी थारे सोड की जी
गोरी आज सुन्दर आज गया छा रग महल म जी।[3]

यहा पत्नी पतिदेव को गढो का राजा कहती है और पति भी उस रग महलों मे जान की बात कहता है। एक और उदाहरण दृष्टव्य है जिसम पत्नी पति से सु दर महल बनवाने का अनुरोध करती है। कल्पना क अतिरेक की चरम सीमा देखिए। उसकी आकाक्षा है कि उसमे सोन चादी की इटें लग। कुकुम केसर को घरट म पिसवा कर गारा बनाया जाए। उस के आगन म

---

१ राजस्थानी लोकगीत–स० रानी लक्ष्मी कुमारी चूडावत पृ० ६७
२ वही पृ० ५३
३ राजस्थानी लोकगीत स० रानी लक्ष्मी कुमारी चूडावत पृ ८१

काज भवें होता एक भाव गीत में सोने के महलों का ही वर्णन है।[2]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि लोक गीतों में कहीं-कहीं कल्पना का अतिरेक मिलता है। यह ...
यह अप्राप्य वस्तुओं के साथ ...
झोंपड़ी में रहने वाले लोक-गायक एवं गायिका सोने-चाँदी, हीरे-मोतियों, रेशम, ऊँचे महलों आदि वस्तुओं को वास्तविक जीवन में प्राप्त तो कर नहीं सकते। वे केवल कल्पना भर कर सकते है। अर्द्ध-चेतन भी उन्हे ऐसी सीमाहीन उड़ान भी क्यों भरने देगा। यद्यपि ये भावनाएँ चेतन (Concious) से अर्द्ध चेतन तक (Sub-Concious) कभी आने नहीं देता है पर ये दमित (Repressed

हैं। दमित भावनाओं
...कगीतों के माध्यम से
... में कल्पना की ऊँची

... लोक गीतों में लगता है। हीरे-मोती प्रस्तर-कणिकाओं के समान, सोना-चाँदी प्रस्तर ढेर के समान, रेशम तुच्छ रज्जु के समान तथा महल ...

१- सोने रूपा री ईंट पिडाय दो ईंट पडायो दो
महारो चुणाय दो ध्रम ने मालियो जी
कुंकू तो केसर हाडिवा गरद पलाय दो
मरद पलास दो जी ध्रण ने म्हारो मालियो
... रो आगण में ताँक बिडाय दो
राजस्थानी लोक गीत—स० रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत पृ० ६५

२- ईंट पडावे घर थारे ए जीजी बाई
ईंठ पडावे घर पारे
यो तो म्हेल चुणावे घर म्हारे ए' (वही, पृ. ३०)

३- राजस्थानी लोक गीतां में यथार्थ (लेखक का लेख) विश्वम्भरा,
वर्ष २ अंक ४

महगी के मार विरहा बिसरल, भूली गई कजरी कबीर ।।
गोरी के देखि उठल जोबनवा अब उठना करेजवा में पीर ।।[1]

अर्थात् महगाई के मारे विरह विस्मृत हो गया है, साथ ही 'कजरी' एव 'कबीर' (गीत विशेष) भी भूल गये हैं। अब तो गोरी के उठे यौवन भी हृदय मे पीडा उत्पन्न नही कर पाते है। यह है लोक-जीवन की वास्तविकता।

...ना को कैसे दबा सकती है? ... रह सकेगा? अवसर मिलत... ...कगीतो मे गोरी का उठल जोबनवा अब भी करेजवा मे पीर उत्पन्न कर रहा है। अब भी कबीर एव कजरी की तानें सुनाई देती हैं। लगता है ये तानें शाश्वत हैं। यदि मानव की दमित भावनाओं और मानव मन की पीडा को लोक गीतो के माध्यम से इस तरह अभिव्यक्त न करें तो ये दमित भावनाएँ मानव का शोषण कर उसे खोखला बना देंगी। विभिन्न मानसिक एव शारीरिक रोग उसे अपना केन्द्र बना लेगे।

वस्तुत लोक गीतो में कल्पना का जो अतिरेक है वह लोक के मानसिक स्वास्थ्य एव सन्तुलन बनाये रखने के लिए आवश्यक है। मन की दमित भावनाएं इन गीतो के माध्यम से प्रकट हो पाती हैं। लोक गीतो का यही मनोवैज्ञानिक पहलू है।

१ भोजपुरी लोक गीतो के विविध रूप, श्रीधर मिश्र पृष्ठ ४२

अश्लील गीतो के गायन का प्रचलन है। राजस्थान म इन्हे 'फाटा', या 'गाली' कहा जाता है। पुरुष, कही कही स्त्रियाँ भी नग पर 'फाटे' गाते हैं। 'लाल केशिया'[1] इन गीतो का नायक है। इन गीता म कवल घोर श्रृंगारिकता ही नही, वीभत्स चित्र तक मिलते हैं।

इसी प्रकार विवाह के अवसर पर बरातियो को लक्ष्य कर 'गाली गीत' गाए जाते हैं। इन गालो गीतो म भी मानव हृदय की वासनात्मक प्रवृत्ति का यथाथ रूप परिलक्षित होता है।

राजस्थानी गाली गीतो तथा भोजपुरी गीता म नायिका क अगो को हलवे, जलवी तथा गुड की भेली व लड्डुओ से उपमित किया गया है। कितना साम्य है इन गीतो की उपमाओ म ?[3]

लोक साहित्य लोक जीवन सर्वत्र फैला हुआ है। समाज में वैध-अवैध किन्तु वास्तविक परिस्थितियो का चित्रण इनम मिलता है।[4] अनक गीतो म जिन अवैध सामाजिक सम्बन्धो के उल्लेख मिलते हैं उनमें यथार्थ का अश अवश्य मौजूद है। वस्तुत दमित भावनाए ही उचित अवसर पर लोक गीतो में यथाथ-परक अभिव्यक्ति पा गयी है।

लोक गीतो में विभिन्न यथार्थवादी चित्र मिलते है। वधू को ससुराल म जो कष्ट दिय जाते हे—जिन परिस्थितियो मे उसका रहना होता है उसके मार्मिक चित्र भी यहा मिलते हैं। एक लोकगीत म पुत्री अपनी माँ को सम्बोधित कर ससुराल क कष्टो का हृदय विदारक चित्र प्रस्तुत करती है कि हे माँ! और सखियाँ ता झूलने जाती है, खलने जाती है, किन्तु मुझे मन भर अनाज पीसने को और मन भर आटा रोटी पकाने को दे दिया जाता है। *अनाज पीसते पीसत मरा मोर (पृष्ठ भाग) दर्द करने लगा है। रोटी पकाते-पकाते* मरी अगुलिया दद करने लगी हैं। यथा –

और सहेलिया मा झूलण जाय, खेलण जाय।
म्हने मण रो माँ पीसणो।
म्हने मण रो मा पावणो।

1- राजस्थानी लाकगीत लेखक पुरुषोत्तम 'मेनारिया, पृ० ४७

२ लेखक द्वारा सकलित 'विवाह—गीतो' से

3- भोजपुरी गीतो के विविध रूप—श्रीधर मिश्र एम ए, पृ० ९९

४ लखक के सग्रह स।

पीसत-पीसत दुख्यां मां मोर ।
पोवत दुखिया मा पैरवा ।।"[1]

बात यहीं तक सीमित नही है । बेचारी क साथ खान-पान में भी दुराव किया जाता है । इतना कमरतोड परिश्रम करने पर भी बचारी को मात्र एक 'बटल्यो (छोटी सी रोटी)' दिया गया, जब कि औरो को बार-बार फुलके दिये जाते है । दूसरो को धपसा (खूब)' शक्कर दी जाती है, पर बेचारी को चुटकी भर नमक । औरो को 'पली' भर-भर कर घी दिया जाता है । पर उसे केवल एक 'मरियो, (छोटी सी पली)' तेल । औरो को कटोरे भर भर कर खीर दी जाती है पर उस छोटी कटोरी मे राबडी (दलिया) । यथा -

'औरो ने दिया मा बुलका ब्यार !
म्हने बटल्यो मा एकलो !
औरो ने मा धपसा-धपसा खाड,
म्हने धपसो मा लूण रो ।
औरो मां पली पली घी,
मने मरियो मा तेल रो ।
औरो ने मा बाटकिया बाटकिया खीर,
म्हने बाटकी मा राब की ।"......

उसकी वेदना का अन्त नही है । वह बर्तन मलने बैठ गयी । तभी एक बिल्ली आ गयी । और उसकी 'बटिया' ले भागी । वह उसके पीछ दौडी तो कैर का कांटा पैर मे चुभ गया, किन्तु बटिया गिरी मिल गयी । उस वटिये को काग को देकर कहती है कि इसे ल जा, मरी मा को दिखाना कि यही तेरी बेटी का भोजन है । कितनी मार्मिक व्यथा है ! इसी प्रकार एक अन्य गीत म श्रावण तृतीया के अवसर पर लेने आये भाई का भी वह अपनी मर्म व्यथा कहती है –

'घडी एक तो थाम वीरा घोड ला,
करारे मनडा री बात । मे हा ...
पगां बलती तो वीरा मू'फिरू,
बाध्या तो आकडले रा पान । में हा.....

१- राजस्थानी लोक गीत—श्रीमती रानी लक्ष्मी कुमारी 'चूडावत पष्ठ ४८

माता तो सुणते वीरा मत कहियो,
झुरसं बरसाले री रात।
भावज तो सुणते वीरा मत कहियो,
करसे पीहरय म बात। म हा ·····
बाप जी सुणरे वीरा मत कहियो,
माढे रे करहे, पलाण ! मे हा······[1]

भाई अपने बहनोई स रूठ कर जा रहा है। वह उसके घोडे को रोककर कहती है कि, हे—वीर ! एक घडी तुम घोडे को थाम कर मन की बात मुझ से कर लो। जूतो के अभाव म मेरे पैर जलते है तो मैं आकडे (आक) के पत्त बाधे फिरती हूँ। जूते का ही नही उसके पास वस्त्रो का भी अभाव है। अपनी सारी व्यथा कह लने के बाद वह अपने वीर से कहती है कि हे वीरा ! तुम य बात मा को मत कहना क्योकि वह इन्हे सुन इस वर्षा की रात म रोयगी। भाभी को भी मत कहना क्योकि वह पीहर म जाकर बात करेगी। हा पिताजी को अवश्य कहना ताकि, वे ऊँट पर चढ़कर मुझ लने आय।

इस गीत म ससुराल म बहू को मिलन वाले कष्ट का यथार्थ वर्णन हुआ है। ननद-भावज का ईर्ष्या जगत विदित है। तभी वह नही चाहती कि, इस सारे दुःख की कथा भावज अपन पीहर मे जाकर कहे। दुःख की कथा भया स कहते समय भी उस भाभी का ध्यान बना ही रहता है कि, कही भाभी न सुन ले। लोक गीत म मानव जीवन की गूढ प्रवृतिया की अभिव्यक्ति यथाथ रूप म होती है। इसी प्रकार क भाव का उल्लख डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय न अपन शोध प्रब ध भोजपुरी लोक साहित्य' मे भी किया है— 'कोई बहन अपने भाई स ससुराल क दुःखो का निवेदन करन के पश्चात् कहती है कि ए भाई ! मेरा यह दुःख भावज स मत कहना नही तो इस बात का वह दो चार और लोगो स बढा चढा कर कहती फिरेगी।

'ई दुःख जनि कहो भईया भऊ जी के अगवा होना।
भऊ जी दो चारी घर कही अईं हैं हो ना।।" (पृ २७८)

यह बात नही कि केवल ननद ही भावज स ईर्ष्या करती है, भावज ननद से कम नही पडती है। बहन भाई के घर पर होली क अवसर पर

१- राजस्थान के लोक गीत ठाकुर रामसिंह स्वामी आदि पृ ८१

अतिथि बनकर आई है। भाई चाहता है कि बहन को चुनरी देकर विदा किया जाय किन्तु भाभी चाहती है कि उसे फटी हुई टूल (लाल रंग की ओढ़नी) देकर विदा कर दिया जाय। फिर भाई कहता है कि, बाई को उसके घर तक छोड आऊँ तो भावज कहती है कि, नहीं उसे आधे रास्ते तक ही छोड आओ। यथा –

"वीरो कहे बाई ने चुन्दडली ओढाई दूं।
भावज कहे बाई न फाटोडो टूल ।।
वीरो कहे बाई न ठेठ पहुँचाई दूं।
भावज कहे बाई ने आदेरे पहुँचाई दो।"....[१]

ननद-भावज की ईर्ष्या भावना शाश्वत है। यह मनोविज्ञान द्वारा भी स्वीकार कर लिया गया है। वैसे भी एक कहावत है :–'ननद उनाले की लाई', अर्थात ननद भावज के लिए ग्रीष्म ऋतु के तप्त दिन के समान होती है।

लोक जीवन मे प्रचलित धार्मिक भावनाओ एव अन्धविश्वासो का भी लोक गीतो मे यथार्थ वर्णन मिलता है। 'डायन' की मान्यता समाज म पाई जाती है। एक गीत मे त्वरा स नाचते हुए पति को उसकी वधू धीरे नाचने को कह रही है। वह बडी तीव्रता स नाच रहा है। इसलिए पत्नी को डर है कि पति को नाचते हुए देखकर 'डायन' कही खा न जाये।

'दो दो कणियाले भवरजी गैर नाचबा चाल्या।
घरा थाँरी परणियोडी ओलम्बिया झाडे रे।
राकणिया डकराम राले रे धीरे नाच ।।"[२]

स्पष्ट है कि यहा एक लोक प्रचलित अधविश्वास का उल्लेख हुआ है। लोक जीवन म न जाने कितने देवी-देवताओ की पूजा का भी विधान है। एक स्त्री सूर्य देव की पूजा करती हुई कहती है –

१- राजस्थान के त्यौहार के गीत--लेखक की अप्रकाशित पुस्तक (परिशिष्ट गीत स० २)
२- राजस्थान के त्यौहार गीत—लेखक की अप्रकाशित पुस्तक (परिशिष्ट गीत स० ५)

"सूरज थाने पूजती भर भर मोत्यां थाल ।
धन्योक तो मोडो उगज्ये म्हारा भवर चढे दरबार ।।"[1]

इस सम्बन्ध मे ई० ओ० मार्टिन ने लिखा है - भारत की यह एक बहुत ही सामान्य ग्रामीण धारणा है कि "रोग, अस्वस्थता आदि प्राकृतिक कारणो के परिणाम स्वरूप न होकर, मात्र देवियो जादू-टोना और नजर आदि के फल स्वरूप होते हैं।"[2]

शील सप्तमी के अवसर पर माताए निम्नाकित गीत गाकर शीतला माता से प्रार्थना करती है कि वह उनके बच्चो की रक्षा करें। यथा --

"बाड बिचाल पीपली जाकी सीली छाय
बला लू सेडल माता ए।
जे तले बालो खलता जी खलत चढ गई ताप।
खिल-खिल बालो घर ग्यो जी बिलख्या सारी रात।
दादी भुवा थर थर काप्या माई बाप ।। बला० ।।[3]

शीतला माता का पूजन केवल राजस्थान मे ही नही किया जाता है। भोजपुरी लोक गीतो से एक उदाहरण द्रष्टव्य है। यथा --

पटु का पसारी भीखि माग्ली बालकवा के माई।
हमरा के बालकवा भिखिदी।
मोरी दुलारी हो मैया, मोरी मनवा रखिनि मैया।
हमरा के बालकवा भीखि दी।"[4]

ऊपरी विवेचन से स्पष्ट है कि लोक जीवन की यथार्थ झाकी लोक-गीतो मे मिलती है। इसका तात्पर्य यह नही कि लोकगीत कल्पना से अछूते हैं। वस्तुत अनेक ऐसे भी लोकगीत प्रचलित हैं जिनमे कल्पना की ऊची उडान भरी गयी है। कही कही तो कल्पना का अतिरेक भी दिखायी पडता है। इस सम्बन्ध मे आवश्यक विवेचन एक स्वतत्र निबन्ध मे किया गया है जो इसी पुस्तक मे अन्यत्र सकलित है। □

---

१ राजस्थान के त्योहार गीत--लेखक की अप्रकाशित पुस्तक (परिशिष्ठ सख्या ५)
२- द गोड्स ऑफ इण्डिया लेखक -- ई० आ० मार्टिन। पृ २५३
३- रास्थानी लोक गीत--ठकुर रामसिंह आदि पृष्ठ सख्या - १८
४- भोजपुरी ग्राम गीत-भाग - १-डा० कृष्णदेव उपाध्याय पृ० २१७

राजस्थानी लोक गीतो मे जन-जीवन

लोक-गीता में जन-जीवन का वास्तविक प्रतिबिम्ब होता है। यदि हमे किसी समाज का वास्तविक प्रतिबिम्ब देखना है तो उस में प्रचलित लोक-गीतो क अध्ययन स अधिक सुविधा-जनक दूसरा साधन नही हो सकता। लोक गीतो मे जन जीवन के चित्र स्पष्ट रूप स उभर आते है। लोक गीतो म हम समाज की विभिन्न परम्पराओ तथा मान्यताओ क दिग्दशन होते है। राजस्थानी लोकगीतो मे धार्मिक और राजनैतिक विचार धारा का भी समावेश मिलता है। आर्थिक तथा कृषक जीवन की झाकी भी उन म उपलब्ध है। समाज म नारी का क्या स्थान है? कौटुम्बिक परिस्थितिया क्या हैं? आदि प्रश्नो क उत्तर भी लोक गीतो म सहज रूप से प्राप्य हैं।

राजस्थान ही नही सम्पूण भारत की जनता धार्मिक विचारो को मानन वाली है। हमारा जीवन धर्म क आधार पर परिचालित हाता है। गीत उसकी उपेक्षा भला कैसे कर सकते हैं? सूर्य की आराधना करने की लोक प्रचलित परम्परा है। एक स्त्री का पति प्रात काल दरबार म जान वाला है। वह प्रार्थना करती है कि सूय देवता कुछ देर से निकले। वह सूय स कहती है कि मैंन आपकी पूजा मोतियो से थाल भर-भर कर की है। आज उस का फल प्राप्त करना चाहती हू। यथा —

'सूरज थाने पूजती हो, भर भर मोत्यो थाल,
छन्योक मोडो ता उगज्ये, म्हारा भवर चढे दरबार।[1]

झूले क गीतो मे भी दवताओ क झूलने की कल्पना की गई है। लाक नायिका झूला झूल रही है। उसकी आकाक्षा है कि पूजनीय दवता भा उस झूले पर आकर झूल। यथा —

वन खण्ड म हिंडो बधायो रशम की डोर जी।
राणी रैणाद हीदण बैठ्या धरती न झल भार जी।
सूरज जो ल ललकारो दीधो खो हिंदो गियो गिरनार जी[2]

---

१ राजस्थानी लाकगीत—पुरुषोत्तम मेनारिया पृ० ४६
२ राजस्थान क लाक गीत - स० ठाकुर रामसिंह आदि पृ० ६०

अर्थात् वन खण्ड म रेशम की डार से झूला बधवाया गया है। राणी रैणा दे झूलने के लिए बैठी हैं। धरती उसके भार को नहीं झलती हैं। सूरज ने जोर म हिलोरा दिया और वह झूला गिरनार गया। उसी झूले म लाक नायिका न राहिणी सावित्री गौरी और रूक्मणी आदि सभी को झुलाया है। उनके पति की तरह ही चन्द्र, ब्रह्मा, ईसर, कृष्ण आदि भी सूरज जी की भांति ही अपनी पत्नियों को जोर से हिलारा दन है। स्पष्ट है कि यहा जन–मानस की धार्मिक भावना के कारण ही इतने देव-देवियो को लौकिक झूले म आकर झूलना पडा है।

'गणगौर, त्योहार के अवसर पर राजस्थान मे कुमारी कन्याएँ गौरी-पूजन करती है। वे पूजा करके गोरी स मनोवांछित वर मागती हैं। गौरी को आदश पत्नी तथा महेश का आदर्श पति क रूप म गणगौर के गीतो म स्वीकार किया गया है। लोक गायक न सभवत सम्पूर्ण विश्व को आत्मसात् करने के पश्चात इन गीतो की सृष्टि की है। इनम समस्त ब्रह्माण्ड को एक स्थान पर देखा गया है। इनकी कल्पना लोक-परलोक की सीमाओ को पार करके दिगदिगन्त मे भ्रमण करती है। इन लोक-गीतो म देवी देवताओ को लौकिक पुरूष एव नारी क रूप म चित्रित किया गया है। गीत की निम्नांकित पंक्तियां देखिए –

'बाया पूजण पूजास्या अक काई वर माग रही।
मैं तो मामू जसोदा एक किसन वर माग रही।
थान सास जसोदा एक किसन वर देस्या।'[1]

यहा नायिका यशोदा जैसी सास और कृष्ण जैसा वर पाने के लिए गौरी स प्रार्थना कर रही है। ऐसे ही और भी उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

राजस्थान की जनता सवदा स्वतन्त्रता प्रमी रही है। उसन अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए निरन्तर प्रयत्न किए है। लाक गीतो न स्वातन्त्र्य प्रेम की इस भावना को भी मान्यता दी है। अग्रेजो के शासन काल में अनेक वीरो न अग्रेजो स निरन्तर सघर्ष किया है। वे उनके सम्मुख भी चुप नही हुए। लोक गीतों म क्रान्ति क स्वर भी पाये जाते है। अग्रेजो के शासन काल का एक चित्र यहाँ द्रष्टव्य है –

1- राजस्थान क लोक गीत -स० ठाकुर रामसिंह आदि पृष्ठ ४४

फट नाँखी भाया म बगार लायोरे ।
देश म यू यारो आयो रे भूरिया मूडालो ।
घोड रोवे घास न टाबरिया रोवे दाणा न ।
महला में ठकराण्या रोवे जामण जाया न ।
देश में अग्रज आयोरे रोलो वापरियो ।[1]

गीत म उल्लिखित है कि अग्रजो न भाई भाई के बीच फूट डाल दी। जनता मे बकारी फला दा । देश म यह भूरे मुह वाला धूत आया है । इसके शासन में घोड घास के लिए और बालक दान क लिए रो रहे हैं । महलो म ठकुरानिया अपन पति के लिए रो रही है । देश म अग्रज न झगडा फला दिया है ।

एक स्थान पर लोक गायक न कहा है

राणा थारा राज मे कोल्या करी न्याय ।

अर्थात हे राणा ! (यहा अगज) तुम्हारे राज में मूर्खों का सम्मान है । जब भी लोक गायक न देखा कि शासन व्यवस्था म किसी प्रकार की असगती आ गयी है तो वह निर्भीक होकर आग बढा है । उसन उस राजनीतिक अव्यवस्था पर स्पष्ट रूप स व्यग्य किया है । वह कभा शासन क भय स मौन नहीं रह सका है । द्वितीय महायुद्ध क समय राजस्थान म अकाल था पर शासन की सारी शक्ति युद्ध में लगी हुई थी तो लोक-गायक न सत्ता को ललकारा –

अग्रज मत कर कागद काला रे ।
राज करेला जरमन वाला रे ।[1]

उसन अग्रजो पर जरमनी वालो क राज करन की भविष्यवाणी की । भल ही यह सही सिद्ध नहीं हुई किन्तु वह कम-से-कम मौन तो नहीं था । इन पक्तियो म उसका आक्रोश ही व्यक्त हुआ है ।

लोक गीतो म जहा कलाकार आर्थिक जन-जीवन क यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है वहीं–कहीं–कहीं वह कल्पना की उडान भी भरता हुआ दिखाई देता है । उपयुक्त विवचन म इस दृष्टि म झूलना एक गीत हमन देखा है । उसी गीत म नायक–नायिका का झूला रेशम–डोर स बाधा हुआ कहा गया

१ राजस्थान क लोहार गीत लेखक की प्रकाशित पुस्तक परिशिष्ट पृ० १३

है। वही सूय की पूजा मातियो से थाल भर कर करन का उल्लेख है। इसी प्रकार दीपावली क एक लोक गीत म सोने का ही दीपक बनवाया जा रहा है और उसम रेशम की बत्ती की कल्पना की गयी है –

मोने रो मैं दिवलो घडास्या
रेशम बाट बटास्या जी।'

रेशम सोना मोती रत्न आदि तो लोक गीतो के भावना लाक मे कतिपय कणिकाओ के समान बिखरे पड हैं। गणगौर के एक गीत में गणगौर दक्षिणी चीर पहन है। पात्रो के बठने के लिए भी नीली घोडी तथा घोडो की कमी नही है। त्योहार गीतो म नायिका लाल पलग पर ही सोती है और वह भी झीना सालू ओढ कर। पहनन के लिए उसक गल म हार है। हाथो म हाथी दात का चूडा भी है।

आर्थिक जीवन के जहा ये भव्य चित्र देखन को मिलत है वहा दरिद्रावस्था क चित्र भी इन लोक-गीतो म हैं। एक गीत मे बहन अपने भाई स दीनावस्था का वणन करते हुए कहती है

पगा तो बलती बीरा मू फूरू
बाधिया तो आकडले रा पान।
माथे नो मोडी बीरा मू फूरू
बाधिया तो पिपलिया रा पान।

कितनी दीन दशा है? जतो के अभाव म वह परा म आक के पत्त बाधती है। सिर पर ओढने को ओढनी नही है अत वह मोडी (नग सिर) ही फिरती है। कभी पीपल क पत्त भी सिर पर बाध लेती है। इस प्रकार यहा समाज म धनवान एव निधन दोनो वर्गों क वणन प्राप्त है। लाक गीता में आवास क सम्बन्ध म भी आर्थिक सम्पन्नता ही अपेक्षता अधिक दृष्टिगत होती है। निम्नाकित उदाहरण म इस की पुष्टि हाती है।

१ गढो ए कोटो सू गवरल उतरी।
(गणगौर क गीत)
२ मई–मई बाट मुग्ग म्हारो दिवलो।
रग महल म न जास्या जी।
(दीपावली क गीत)

इन के अतिरिक्त अन्य लोक गीतो मे भी ऐसे ही उदाहरण मिलते हैं, किन्तु वास्तविक तथ्य यह नही है। यह तो समाज के मात्र कुछ गिने-चुने लोगो का चित्रण है। वास्तव म सामान्य लोक जीवन म इन वस्तुओ का सर्वथा अभाव रहता है। यहा तक की समय पर पहनने को वस्त्र भी नही प्राप्त होते हैं। अस्तु, यह भी स्वीकार करना होगा कि इन उदाहरणो मे कल्पना की ऊँची उड़ान भरी गई है।

धार्मिक, राजनीतिक एव आर्थिक चित्रो की झलक के पश्चात् अब इन मे कृषक जीवन के चित्रो का अवलोकन करेंगे। निम्नांकित गीत में कृषक जीवन की विभिन्न क्रियाओ का चित्रण हुआ है। इस में वर्षा ऋतु मे कृषक-जीवन की व्यस्तता का वर्णन है :–

"म्हारो बीरो जी बीजे बाजरो,
म्हारा मामा जी काटे फोग।
म्हारा काका जी चरावे टोडिया;
म्हारा मारूजी लावे छकियार।
आज म्हारी बादली बरसेली।।"[1]

राजस्थान मरूभूमि है। मरूभूमि के कृषक ही पावस ऋतु के वास्तविक महत्व को समझ सकते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि जहा जल का अभाव हो वहा के निवासी पावस ऋतु मे उसकी पूर्ति देखकर प्रसन्न हो। उनकी यही प्रसन्नता एव उल्लास उद्दाम वेग से गीतो में स्वच्छन्द निर्झरणी के समान फूट पडता है। इन गीतो मे हमे कृषक जीवन के सरल एव स्वाभाविक चित्र दृष्टिगत होते हैं। यथा :–

"नित बरसो मेहा बागड मे, नित बरसो मेहा बागड में।
मूगर चँवला बागड निपजै, जवडा निपजै खादर मे।
टोड टोडिया बागड निपजै, भैंस्या निपजै खादर मे।"[2]

अर्थात् हे मेघ! मरूभूमि म नित्य बरसा करो। मोठ, बाजरा मरूस्थल (बागड़) मे उत्पन्न होता हैं और गहू उपजाऊ भूमि (खादर) म। ऊँट बागड म होते हैं और बैल खादर में। भेड-बकरी बागड मे और भैंस खादर म होती है। हे मेघ! मरूभूमि पर नित्य बरसो। अन्य गीतो मे भी

१- राजस्थानी लोकगीत—स० ठाकुर रामसिंह आदि पृ० ८८७
२- वही पृ० ४८६

कृषक जीवन के ऐसे ही भाव पूण चित्र मिलते हैं। एक गीत का और उदाहरण देखिए –

"माटी मोटी छाटा आसरियो ए बदली।
ओसरिया ए बदली कोई जोडा ढेलम पेल।
सुरगी रूत आई म्हारे देश भली रूत आई म्हारे देश।।[1]

अर्थात् उमड घुमड कर मोटी-मोटी बून्दा से मेघ ने बरसना आरम्भ कर दिया। ताल तलैया ढेल मेलकर उतरा रहे है। हमारे देश मे भली और मनोहर ऋतु आई है। इसके पश्चात् प्रश्नोत्तर शैली म गीत बढ चलता है –

'ओ कुण बीजै ए बदली? ओ कुण बीजै मोठ मेवा मिसरी ?
इसर बीजै बाजरो ए बदली बाजरो ए बदली।
कानू बीजै मोठ मेवा मिसरी ।।टेक।।

बदली से प्रश्न किया गया है कि यह कौन है जो मोठ बो रहा है। मेवा मिसरी कानू या कृष्ण बो रहे है। मोठ ही कृषक जीवन के मेवा-मिश्री हैं। इसके उत्तर मे कहा गया है कि ईश्वर तो बाजरे बो रहे हैं और कृष्ण मोठ। पावस ऋतु सम्बन्धी ऐसे चित्र अन्य प्रदेशो के लोक गीतो म भी देखन को मिल जाते हैं। यथा

रिमझिम परे फुहार ओ बुंदिया टपकि रही।
झिलमिल बहै बयारि पवन झनि डाल रही।। '[2]

लोक गीतो मे जहाँ उक्त परिस्थितियो का विशद चित्रण मिलता है, वही नारी जीवन के भी विभिन्न चित्र भी मिलते हैं। लोक गीत जन-मानस का प्रतिनिधित्व करते है। अत उनम नारी के सवेदन शील हृदय का अकन होना स्वाभाविक है। इन गीतो म कही बालिका ननद क रूप में भावज को व्यग वाणो म मर्माहत कर रही है, तो कही ननद भाभी के पारस्परिक परिहास की झाकी मिलती है। कही बालिका अपनी मा स सावन के महीने म झूला डलवाने के लिए आग्रह कर रहा है। कही वह माँ से भाभी की शिकायत करती है तो कही भैया के समक्ष अपने ससुराल के कष्टो का रोना रोती है। पत्नी के रूप म नारी ने विभिन्न अवसरो पर अपने प्रवासी प्रियतम को घर आ जाने का अनुरोध किया है। कही वह कीर के बेट को

१- राजस्थानी लोकगीत—स० ठाकुर रामसिंह आदि पृ० ६१
२- बनउजी लोक गीत–लेखक मतराम अनिल पृ० १०४

धर्म-भाई बनाकर अपने प्रवासी-प्रियत्तम के मार्ग में बाधक नदी को पार करवा देने की प्रार्थना करती है। इनके लिए ईनाम का प्रलोभन देना भी वह नही भूली है। कही कौओ से ही अनुरोध करती है कि उसके प्रियतम के आने का सदेश ला। नारी-हृदय के विभिन्न भावमय चित्र इन लोक गीतो मे उपलब्ध हैं। इस कथन की पुष्टि के लिए यहा कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

मातृ प्रेम की स्पष्ट अभिव्यक्ति यहा देखी जा सकती है। यथा :-

१. 'फागण लागो नीलडी सणगार म्हारो बीरो जी आयो।
बीरा जी म्हाने छोड मत जाइजो होली आइयो।

२: 'कस्यो बीरो धोवे ए धोवनियो ?
कस्यो बीरो करे ए सणगार होली थारे कारणे ।
ओतो पडियो ए परदेशो।'

३. 'ओ कुण बीरो छोगा राले ?
ओ कुण बीरो कणियाँ गैर नाचे।
......(अमुक) बीरो छोगा राले।'[1]

४. 'बीरा डागलिए चढ देखू रे जो कोई आवे लेण न ।
बीरा लाल दुमालो रेक.......(अमुक) आवे लेण न ?

५ 'काठ्यो तो बाढ्यो डाडो केर को जी

× × ×

काटण वालो म्हारो समरथ वीर।[2]

उक्त उदाहरणो म बहन का भाई के प्रति असीम प्रेम व्यजित हो रहा है। प्रथम उदाहरण मे भाई उस नीली घोडी का श्रृंगार करके होली के अवसर पर लेने आ गया है तो दूसरे में कहा गया हैं कि भाई विदश मे है अतः बहन को लाने के लिए कौन तैयार हो ? तीसरे में भाई के गैर नृत्य म अपूर्व शृगार कर नाचने का उल्लेख है तो चौथे मे बहन छत पर चढ़कर

१- राजस्थान के त्योहार गीत—लेखक की अप्रकाशित पुस्तक
परिशिष्ट पृ० १ व २

२- राजस्थानी लोक गीत—गंगा प्रसाद कमठान

भाई के आने का पथ निहार रही है। और अंतिम उदाहरण में कहा गया है कि होली का डाँडा उसी के समय भाई द्वारा काटा गया है। इस प्रकार बहन-भाई के अपूर्व प्रेम की झाँकी इन गीतों में स्पष्टतः दृष्टिगत होती है।

एक अन्य गीत में ननद भावज के स्वाभाविक ईर्ष्या-द्वेष का वर्णन मिलता है। भाई चाहता है कि बहन को लाल रंग की सुन्दर ओढ़नी (टूल) दी जाय किन्तु भाभी इसका विरोध करती है। भाई उसे घर तक छोड़ आने का प्रस्ताव भी करता है पर भाभी उसका विरोध करती हुई कह देती है कि नहीं इन्हें आधे रास्ते तक ही छोड़ आइए। यथा –

> बीरो कहे बाई ने चूदड़ली ओढाई दूं।
> भावज कहे बाई ने फाटोडी टूल।
> बीरो कहे बाई ने ठेठ पहुंचाई दूं।
> भावज कहे बाई ने आदेरे पहुंचाई दो।[1]

ननद भावज के अरुचिकर सम्बन्धों का वर्णन भी इन लोक गीतों में मिलता है। ननद को जेठ की दोपहरी की उपमा दी जाती है या ग्रीष्म का ताप कहा जाता है। इस मान्यता का लोक गीतों में निर्वाह हुआ है।

जहां बहन भाई को इतना प्रेम करती है वहां भाई भी बहन को कम प्रेम नहीं करता। वह भी उससे हार्दिक प्रेम करता है। जब जब बहन का निमन्त्रण आया है उसे भी उसने सदा सिर आंखों पर लिया है। बहन के मनोरंजन के लिए उसी ने गणगौर तैयार की है। यथा –

१ म्हारे बीरे जी माडी गणगौर हो रसिया।'

२ म्हारे बीरे जी मढायो चग बाजणा।

बस्तुतः भाई बहन का सच्चा प्रेम इन लोक गीतों की निधि है।

लड़की अपने भाई से ससुराल के सारे दुखों का उल्लेख कर देती है। साथ ही यह चेतावनी भी देती है कि वह माता के आगे इन कष्टों की चर्चा न करे क्योंकि बरसात की रात में इन दुखों को सुनकर माँ रो उठेगी –

> माता तो सुणते बीरा मत कहिया।
> चूरसै बरसातें री रात।'

---

१ राजस्थान के त्यौहार गीत—लेखक की अप्रकाशित पुस्तक परिशिष्ट पृ० १

बेटी मां का इतना ध्यान रखती है। मा भी बेटी को भूल नही पाती है। मा घर पर बैठी है। उसे अपनी पुत्री का ध्यान आ जाता है। तभी पुत्री को लिवा लाने के लिए छोटे पुत्र को भेजती है :–

'पीढ़े तो बैठी मायड मन करियो।
मन कर मेल्यो लोड़ो वीर।'

पत्नी के रूप मे नारी इन लोक गीतों में संयोगिनी एवं वियोगिनी दोनों रूप में चित्रित की गई है। सयोग शृगार में नारी का जो रूप होता है वह लोक गीतो में उतना उभर कर नहीं आया है, जितना वियोग शृगार का रूप। वियोग मे नारी का सवेदनशील हृदय मुखर हो उठा है। उसने अपने आसुओं से भीगे स्वर में जो कुछ गाया है वह लोक-साहित्य की अमर निधि है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि "लोक गीतो की नायिका पर रीतिकालीन सौ-सौ मुग्धाएं और खंडिताए न्योछावर की जा सकती हैं।

पारिवारिक सम्बन्धो का चित्रण भी लोक गीतो मे उत्तम रूप मे उपलब्ध होता है। गणगौर का त्योहार है। पत्नी पति से अनुनय करती है कि मुझे भी गणगौर खेलने जाने दो –

'म्हारे वीरे जी मडाई गणगौर हो रसिया
घडी दोय खेलवाने जावा दो।'[1]

किन्तु रसिक पति अपने मिलन के क्षणों को मधुरिम बनाना चाहता है। वह नही चाहता कि उसकी प्रेयसी, दिन भर सहेलियो के साथ गणगौर खेले और वह अकेला रहे। अत वह कहता है –

'घडी दोय खेलती, पलक दोय खेलती।
साथणियों मे सारो दिन खोवे ए मिरगानैणी।
थारे बिना म्हारो हिवडो भरियो डोले।।'

अर्थात तुम सहेलियो के साथ खेलते हुए सारा दिन व्यतीत कर दोगी। तुम्हारे अभाव में मेरा हृदय भर जाता है। वह प्रेम धन्य है जिसमें क्षण भर का वियोग भी सह्य नही है।

---

१. लेखक की अप्रकाशित पुस्तक : राजस्थान के त्योहार गीत, गणगौर के गीत

पत्नी के रूप म नारी को अपनी दक्षता का परिचय देना होता है। उसे परिवार का सतुलन बनाये रखना होता है। उसस प्रियतम की माग कुछ रहती है तो सास की कुछ, परन्तु वह सबको सतुष्ट करती है। यही उसकी दक्षता है।

सामू माग कूकडी तो साजन माग रूप।'

एक स्त्री चरखा कात रही है। सासू सूत की गड्डी (कूकडी) मागती है और साजन रूप मागत हैं।

'दिन म देऊली कूकडी हो रसिया।
रात्यू देऊली रूप हो रसिया।'

तभी वह दिन म सास को प्रसन्न रखन के लिए सूत कातता है और रात म प्रियतम स रूप विलास करती है। इस प्रकार वह परिवार म अपन कतव्य को निभाने मे सफल हो जाती है।

नारी के सवेदनशील एव भावुक हृदय के सुन्दरतम चित्र लोक गीतो के वियोग वणन मे जिस रूप मे चित्रित किये गय हैं वे लोक साहित्य की अमूल्य निधि हैं। नारी अपने प्रियतम से विलग होकर कितनी दुःखी हो जाती है? उसका जीवन पुरूष क अभाव में निरर्थक लगता है। उसे पति के वियाग की कल्पना भी असह्य प्रतीत होती है। उस जब ज्ञात हो जाता है कि उसके प्रियतम प्रात काल दरबार म चले जाएगें तो वह सूरज से प्राथना करती है –

'सूरज थांने पूजती हो भरभर मोत्यॉं थाल।
छ्याक मोडो तो उगज्य म्हारा भवर चढ दरबार।।

यही नहीं प्रियतम के अभाव म उसे सारे पव-त्योहार भी फीके लगते हैं। तभी वह दीपावली के पावन पव पर प्रियतम स घर आने का आग्रह करती है –

दशरावा रो मुजरो दीवाल्या घर री करज्यो जी ढोला।'

उसका प्रियतम दशहरे पर भी घर नही आया था अत दीवाली पर घर आने के लिए उनम आग्रह की मार्मिकता स्वत सवध है। नारी अनुरोध के अतिरिक्त और कर भी क्या सकती है! पति की अनुपस्थिति म नारी की अवहेलना भी कम नही होती। एक गीत म वर्णित है कि दूमरा को खूब घी

दिया जा रहा है, किन्तु बहू को कवल थोडा सा तेल दिया गया है। दूसरो को खूब शक्कर दी जा रही है, पर उसे केवल चुटकी भर नमक दिया जाता है :–

''औरा न मा घपसां - धपसा खाण्ड
मने ए मा चमटी लूण की।
औरा ने ए मा पली पली घी
मन मा मरियो तेल को।

कितना दुराव है बहू के प्रति परिवार म ! यह तो नारी का ही हृदय है जो उस सहन करता है। जहा नारी का हृदय कुसुम–सा कोमल है वही इन दु खों को सहने के लिए वह वज्र-सी कठोर भी है। हमारे राष्ट्र कवि गुप्त जी ने नारी की इसी दीन दशा का चित्रण करते हुए कहा है :-

'अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी।
आचल में है दूध और आखो म पानी ।।'

कहा जायेगा कि लोक-गीतो में जन-जीवन का वास्तविक एव यथार्थ चित्र मिलता है। यह जन-जीवन का वह दर्पण है, जिसम उस का सही प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। ☐

राजस्थानी लोक गीतों में संस्कृति

मस्कृति शब्द मस्कृत भाषा के 'म' उपसर्ग से 'कृ' धातु के साथ 'क्तिन' प्रत्यय लगाने से बनता है, जिसका शाब्दिक अर्थ अच्छी स्थिति अथवा सुधरी हुई स्थिति माना जाता है किन्तु यह शब्द अर्थ विस्तार लिए हुए है। सस्कृति जातीय होती है, व्यक्तिगत नहीं; वह सभ्यता से पृथक है। दर्शन, भक्ति, नीति, माहित्य, रीतिरिवाज और पूर्वजों का चरित्र उसी के अंग हैं। मस्कृति की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न रूप में करने का प्रयत्न किया है।

'सम्मेलन-पत्रिका' के लोक-सस्कृति विशेषांक में कहा गया है— भारतीय लोक मस्कृति की आत्मा भारतीय साधारण जनता है, जो नगरों से दूर गांवों, वन-पर्वतों में निवास करती है। 'आत्मौपम्येन सर्वत्र' यही भारतीय सस्कृति का सिद्धांत है। इसी सिद्धान्त का स्वभावतः पालन करती हुई भारतीय साधारण जनता ब्रह्म-तत्व को अनायास समझती है। भारतीय-ग्रामवासिनी-सस्कृति के मूलाधार, जिन्हें आज की परिभाषा में अनपढ़-गंवार कहा जाता है, भारतीय सस्कृति के जीवित जागृत प्रहरी हैं।'

लोक गीतों में मस्कृति के प्रत्येक पहलू का विशद और स्वाभाविक चित्रण प्राप्त होता है। हमारी जितनी भी परम्पराएँ, रूढ़ियां एवं प्रथाएं हैं, इनका इन गीतों में, कथाओं में एवं लोक-साहित्य के अन्य विभिन्न रूपों में चित्रण उपलब्ध है। ये ही परम्पराएँ, रूढ़ियां तथा प्रथाएँ हमारे जन-जीवन की सस्कृति के मूलाधार हैं। यदि किसी देश-समाज अथवा जाति की संस्कृति का अध्ययन करना हो तो उसमें प्रचलित लोक साहित्य का सूक्ष्म निरीक्षण आवश्यक हो जाता है। उसके अवलोकन के अभाव में उस सस्कृति का पूर्ण अध्ययन कठिन है।

लोक गायक समाज अथवा अपने चारों ओर के परिवेश में जो कुछ देखता है, साफ-साफ कह गुजरता है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है — "भारतीय सस्कृति के विकृत एवं श्रेष्ठ दोनों प्रकार के स्वाभाविक चित्र इन लोक गीतों में उपलब्ध होते हैं। इनमें न तो अतिरंजना है और न

अत्युक्ति। ग्रामीण कवि ने समाज में जो कुछ देखा है एवं अनुभव किया है उसको उसी रूप में वर्णन उपस्थित किया है।'[1] लोक साहित्यकार समाज का यथा तथ्य चित्रण प्रस्तुत करना ही अपना मुख्य कर्तव्य समझता है।

यह बात नहीं कि लोकगायक सर्वत्र यथा तथ्य ही कहता है, कहीं-कहीं वह कल्पना के पंख लगाकर गगन की ऊँचाई भी नापने जाता है और पुन धरती पर लौट आता है। जिस समय लोक गायक सुखद जीवन की कल्पना करता है हम उसके जीवन में ग्रहीत संस्कृति के दर्शन हो जाते है।

लोक गायक समाजिक, आर्थिक राजनैतिक एवं धार्मिक सभी का वर्णन करता है। सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू पर लोक गायक ने प्रकाश डाला है संभवत उसकी पैनी दृष्टि से संस्कृति का कोई महत्त्वपूर्ण पहलू नही बच पाया है। मानव के जन्म से मरण तक अवसरानुकूल गीत गाने का विधान है। इसी विधान के अन्तर्गत समाज के प्रत्येक पहलू का लोकगायक चित्रण करता है।

ऐसे साहित्यकार कम होते हैं जो शासन के विरुद्ध दो शब्द कह दे अथवा शासन के अत्याचार-अव्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठा सके। लोक-गायक निर्भय होकर शासन को चुनौती देता है। अत्याचारो के विरुद्ध उसकी आत्मा का क्रन्दन इन गीतो मे गूजता है। एकतन्त्र म अत्याचार एव अव्यवस्था का अभाव नही होता। लोक साहित्यकार कभी मौन होकर इस नही सह सका। एकतन्त्र के समय ही किसी लोक गायक ने राणा जी के राज्य की अव्यवस्था देख कर कहा था —

"राणा थारा राज मे कोल्या करी खाय"

तात्पर्य था कि राणा जी आपके राज्य म मूर्खों के ठाठ हो रहे हैं। यह तो एक उदाहरण हुआ किन्तु जब-जब अवसर आया है लोक गायक ने खुलकर शासन एव शासक की आलोचना की है। अंग्रेजो के शासन काल की स्थिति का वर्णन करते हुए लोक कवि ने कहा है —

देश मे अगरज आयो रे, काई काई लायो रे ?
फूट नाकी भाया म बेगार लायो रे।'

अर्थात् देश में अंग्रेज आया है। वह क्या-क्या लाया है ? प्रश्न का उत्तर दिया गया है — उन्होने भाई-भाई मे फूट डाली है और बगार लाया

१- भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन — डा० कृष्ण देव उपाध्याय पृ० २३५

है। इसी प्रकार की भावना एक भोजपुरी लोक गीत में भी व्यक्त की गई है। कहा गया है कि – हे विदेशी, तुम्हारे राज्य मे भारत बेहाल हो गया है। जौ और चन महगे हो गये है और चावल मिलता नही है। यथा :–

भारत होगइल बेहाल विदेशी तोरे रजवा मे,
जौ चना महगा भइले, चउरा मिलत नइखे।

यह मात्र शासन की आलोचना नही है। यह है हमारी संस्कृति के एक अग को चुनौती।

सामाजिक जीवन के विभिन्न रूप लाक गीता मे देखने को मिलते हैं। नारी की दयनीय दशा, सयोग-वियोग, दाम्पत्य प्रेम, परिवार के अन्य सदस्यो से सम्बन्ध, भोजन, वस्त्र आदि सभी परिस्थितियो का चित्रण भी लोक गीतो मे मिलता है।

नारी की अत्यत दयनीय दशा का चित्रण लाक गीतो म हुआ है।

लोक गीतो म कही नारी पति के द्वारा पीटी जा रही है तो कही सास-ननद उसे कष्ट देती है। कही निर्धनता क कारण उत्पन्न दुखो का वर्णन है और कही वह पति के अभाव म विरह वेदना से पीडित है। एक गीत म वर्णित है कि पति ने मोटी एव मजबूत लकडी ली और उससे पत्नी की पिटाई की। पत्नी हाथ जोड कर कहती है कि मुझे मत मारो, मरे मा-*बाप भी नही है"*[1] *यह करुण दशा की चरमावस्था है। नारी क प्रति* इसी प्रकार के अमानुषिक व्यवहार का उल्लेख एक भोजपुरी लोक गीत मे भी देखन को मिलता है। एक स्त्री न अगूठी खो दी। फलत उसकी सभी पिटाई करते हैं। यथा –

सासु मोरी मारे ननद मोरी मारे, सइया मारे रे।
बबूर डढा तानि तानि, सइया मारे रे।[2]

१- मोटी लीनी कणिएर सोटी, एक जो मारी न दूसरी,
न हो राजा तीसरी में जोड्या हाथ
जो ये धणियर साटी मार हो, हो राजा,
नही म्हारे माय न बाप।
नही म्हारे माय न मावसी हो राजा।
कुण म्हारो आणो न जाई।
– राजस्थानी लोक गीत—स० गया प्रसाद कमठान पृ० १४

२- भोजपुरी ग्राम गीत (भाग १) डा० कृष्ण देव उपाध्याय, पृ० ३०६

नारी को इन के साथ मानसिक कष्ट भी झेलने होते हैं। पतिदेव छोड़कर विदेश चले जाते है और वह बेचारी घर की चार दीवारी मे बन्द विरह-वेदना की ज्वाला मे जलती रहती है। एक गीत में वियोगिनी के स्वप्न में प्रियतम के आने का वर्णन है। इससे वियोगिनी की पीड़ा द्विगुणित हो जाती है और वह स्वप्न पर बौखला उठती है। वह कहती है कि हे सपने लगता है, मैं तुझे मार डालू क्योंकि तूने मुझ वियोगिनी को ठग लिया है। यथा :–

सुपना जी बैरी थनै मार दू जी
कोई कत्ल ए जिए कराय
सूतो थें ठगली भवर जो री गोरड़ी "[1]

भोजपुरी लोक गीत की विरहणी स्वप्न को नही कोसती, वह अपने निर्दयी प्रियतम पर ही क्रोधित होती है –

निरदरदी रे यार भेजे नही पाती, सूत रहो सपनों एक देखो,
सपने में पिया आये।
चिहुकि उठो कहूँ नही देखो, अब उठत करेजवा मे सूल, पिया नही आयो
ए पाटी ओ पाटी लपटो, अब नहीं आवे करेजवा मे धीर, पिया नही आयो।[2]

अब उसे धैर्य नही रह गया है। प्रियतम नही आये। कितनी मार्मिक व्यथा है! उक्त दोनो गीतो मे भाव साम्य है। पहली, जहा प्रियतम को निर्दयी न कहकर स्वप्न को ही मारने को तैयार हो जाती है, वहीं दूसरी प्रियतम को निर्दयी भर कहती है। व्यथा दोनो में समान प्रकार की ही है।

नारी ने वध्या के रूप मे, विधवा के रूप मे, सधवा के रूप में, बहन, माता, पत्नी, भाभी, बहू सभी रूपो में न जाने कितने-कितन कष्ट उठाए है। लोक गीतो का स्वर नारी के इन विभिन्न रूपो की करुण कथा से वस्तुतः गीला हो गया है।

भारतीय संस्कृति में धर्म का भी महत्व पूर्ण स्थान है। धार्मिक मान्ताओं ने भारतीय जनता मे विभिन्न प्रकार के अन्धविश्वासो को भी जन्म दिया है। 'शीतला माता' का पूजन भारतवासी केवल इसलिए करते हैं कि

१- राजस्थानी लोक गीत – रानी लक्ष्मी कुमारी चूडावत, पृ० १०६
२- भोजपुरी लोक गीतो के विविध रूप – श्रीधर मिश्र, पृ० ८१–८२

चचक शीतला देवी के प्रकोप से फलता है। एक गीत [1] मे शीतला माता को बालको की रक्षा करने वाली कहा गया है। भोजपुरी गीत मे उससे बालक की रक्षा करने की भीख मागी जा रही है।[2]

एक लोक गीत मे लोक प्रचलित अंधविश्वास डायन द्वारा डकारने की भी चर्चा है। किसी नव वधू के पति गर-नृत्य मे त्वरा पूवक नाच रहे हैं। उसे यह आशका है कि उसके पति को डायन खा जाएगी। अत वह उनसे कहती है कि वह धीरे धीरे नाचे।[3]

यथा समय और स्थान के अनुकूल विभिन्न देवी देवताओ की पूजा का विधान भी इन लोक गीतो मे पाया जाता है। कष्ट के समय देवताओ को स्मरण किया जाता है। किसी स्त्री का पति प्रात काल दरबार मे जाने वाला है। वह स्वय उसे रोक पाने मे असमथ है। अत बचारी तुरन्त अपने पूज्य देवता सूय से प्राथना करती है। वह कहती है कि मैंने तुम्हारी पूजा मोतियों से थाल भर भर की है। वे प्रात काल दरबार मे जाने वाले है। अत आप थोड़ा देर से उदय होना।[4] शिवा पावती की पूजा के लिए राजस्थान मे एक विशेष त्योहार मनाया जाता है – गणगौर। कुमारी कन्याए गौरी की पूजा कर मनोवाछित पति की कामना करती है और विवाहिता उनसे अपने सुहाग को अमर रखने की।[5]

---

१ दरे मारे आद भवानी ऊठाला री राणी बालूडा रखवाली ए माय।
–राजस्थानी लोकगीत गगा प्रसाद कमठान पृ० १२०

२ पटका पसारे भीखि मागली बालकवा के माई
हमरा के बालकवा भीखि दो।
भोजपुरी ग्राम गीत (भाग १) डॉ० कृष्ण देव उपाध्याय पृ० २६७

३ धरा धारी पराणी थोडी ओनम्बिया झोड रे धीरे नाच।
डाकणिया डकराय रात रे धीरे नाच।
–राजस्थान के त्योहार गीत (लेखक की अप्रकाशित पुस्तक) परिशिष्ठ गीत स० ५

४ सूरज थाने पूजती भर भर मोत्या थाल
छ योक मोडो उगज्ये म्हारा भवर चढ दरबार।
–राजस्थान के त्योहार गीत (लेखक की अप्रकाशित पुस्तक) गणगौर के गीत

५ दखिए वही गणगौर त्योहार

राजस्थान वीर प्रसू भूमि है। यहा उन वीरो की पूजा की जाती है जो परमार्थ के लिए अपने प्राणों से खेल गए है। यहा ऐसे अनेक वीर हुए है। उन वीरो को यहा जूझार कहा जाता है। वे इस वीर भूमि के पूजनीय एव वन्दनीय हैं। उनके जीवन से सम्बन्धित गीतों का प्रचलन है। उनकी पूजा की जाती है। मूर्ति पूजा हिन्दू धर्म की विशेषता है, हमारी संस्कृति का अग है। उनसे सम्बन्धित गीतो का विवेचन लेखक 'राजस्थान के लोक देवता एव लोक गीतों मे धार्मिक भावना' शीर्षकों के अन्तर्गत कर चुका है। अत: यहा उनका सकेत ही पर्याप्त है।

इसी प्रकार खान-पान, वस्त्र-आभूषण आदि की भी विस्तृत चर्चा स्वतत्र रूप से की जा सकती है। यहा केवल एक गीत पर विचार करना पर्याप्त होगा। गीत मे लापसी[1] और भात के रूप मे खाद्य वस्तुओ की चर्चा है। उसी में पोमचा तथा दक्षिणी चीर जैसे वस्त्रो की भी चर्चा है।[2] एक अन्य गीत मे 'पीले' (ओढनी) का उल्लेख है। यह केवल वही स्त्रियाँ ओढ सकती है जो मातृ-पद प्राप्त कर चुकी हैं। बिना मा बने 'पीला' ओढना वर्जित है।[3]

राजस्थानी जीवन दर्शन के सम्बन्ध मे मुख्य बात यही है कि रास्थानी वीरो को जीवन से कोई मोह नही है। वे मरण-त्योहार को ही मगल-त्योहार गिनते हैं।

वीर भूमि की यही मान्यता रही है। प्रमाण मे निम्नाकित राजस्थानी सुभाषित भी देखा जा सकता है –

रिण रहमिया न रोए, रोए रिण छाडे गया।
इण घर तो आगलगे, मरणे मगल होय॥

एक लोक गीत से भी यही बात कही गई है कि मर्द मरने के लिए ही बने हैं।

---

१. गेहू के दलिये मे गुड एव घी डालकर हलवे जैसे बनाई जाती है।

२ जाओ मा रादू ओ ढोला/लापसी, रेवो तो रादू ओउजलाभात जाओ तो ओढू पोमचो, रेवो ना ओढू दखिणी चीर।
—लेखक के सग्रह से

३. बाल भोल जिय जावे रसिया, पीलो हलदी को,
पीलो हल्दी को मगायो जो, बालम रसिया, पीलो हलदी को।
परम्परा-भाग १५-१६ पृ० १८३

मत जा झगडा म, झगडा म बाबनियो मरिया रे
मत जा झगडा म, माटिडा मरया न गडिया आ जाणो झगडा मे।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि युद्ध म मरना ही जीवन का लक्ष्य है। यहाँ दो सुभाषित इस प्रसग म देना पर्याप्त होगा। यथा –

कथ परायै गार म भाजे मोहि गवार।
लादण लावै दुहु कुना, मरणो एक हि वार॥

और––

रण जीतण तोरण बधण पुत्र वधाइ चाव।
ये तीनू दिन त्यागरा कहा रक कहा राव॥

इसक अतिरिक्त गीतो म परोपकार सम्ब धी दृष्टिकोण भी दिखाई देता है। आत्मा परमात्मा स पूछती है कि मुझ तुमन इस ससार में जन्म क्या दिया। मुझ पीपल का वृक्ष बनाया होता तो मेरी छाया म पथिक बठकर विश्राम कर पात।[3]

राजस्थानी जीवन म ही नही भारतीय जीवन म भाग्य वादिता का प्रमुख स्थान है। एक राजस्थानी गीत म पत्नी पति स कहती है कि रोटी को बाधिए मत रोटी कौन देगा? पति कहता है कि पगली भाग्य का भरोसा कर, रोटी तो राम देग।[4] वास्तव म भारतीय जीवन म यही मान्यता प्रचलित है।

बहु देव वाद की मा यता भी यहा है। राम कृष्ण, शिव पार्वती, माता–भरू आदि न जान कितन लोक देवता है जिनकी पूजा का प्रचलन है।

---

१ मगरे की परम्पराय (वरदा वष ८ अक १) लखक का लेख, पृ० ४२
२ राजस्थानी मध्यकालीन लोक साहित्य परम्परा भाग १५ १६ पृ० १६४
३ ए माता म्हानै करती पारस पिपरी ओ जी।
इ ता आवता पथिडा छाया बठना ओ जी।
–मधवाना के मृत्यु गीत (मरू भारती ११–४)
लेखक––महेन्द्र मनावत
४ ढोला कवर जी रोटी न मत बाधो,
रोटी कुण देला?
जा जा गली भाग भरोस राटा राम देला।
—सकलित

कुछ सप के देवता भी हैं जैस तेजाजी, गोगा जी, और पाबू जी। इनके स्थानों पर साप काट हुए व्यक्ति को ले जाया जाता है जिससे कहा जाता है कि विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है। इनस सम्बन्धित गीतो का विवचन अधविश्वास—रोग और उनका उपचार शापक' म किया गया है। भैरु जी पुत्र देने वाले देवता के रूप म पूज जात हैं।

एक गीत म कहा गया है कि भैरु जी! मैं आपकी शरण मे आई हू। क्या आप मेरी गोद भरवायग ?[1] ऐसे ही रामदेव जी, पीर जी आदि अनेक देवी-देवता हैं, जिनकी पूजा का विधान है।

अस्तु कहा जायेगा कि लोक गीतो म लोक सस्कृति का वास्तविक स्वरूप सुरक्षित है। लोक गीत सस्कृति रूपी शरीर की शिराए हैं। इन शिराओ की परीक्षा स ही लोक सस्कृति की स्वस्थ-अस्वस्थ अवस्था का सही ज्ञान प्राप्त हो सकता है। वस्तुत लोक गीतो के माध्यम स सस्कृति के सच्चे स्वरूप का परिचय प्राप्त होता है। किसी क्षत्र अथवा दश की सस्कृति का ज्ञान प्राप्त करन क लिए लोक गीतो का अध्ययन उपयोगी है।

---

१ म्हारा रे गांम को अखड भोमियो
म्हने थारो थारो नाम बतायो म्हारा भरु जी म्हारी गोद भरावलो काइ र
घाटा की रे माना गूजरी थारे शरण आई रे।
—सकलित

राजस्थानी लोकगीतो मे चित्रित अंधविश्वास

राजस्थानी लोक जीवन म ही नही वरन समार के प्रत्यक भाग म विविध अध-विश्वास प्रचलित हैं। इन विश्वासो को मानव तर्क के आधार पर न्यायोचित नही ठहरा मक्ता, किन्तु परम्परा स विरासत में मिले इन विश्वासो की अवहेलना करन में भी वह असमर्थ है। अध विश्वासो स मानव स्थायी समझौता कर चुका है। जीवन की यह विडम्बना है। जहा मानव निबल और उमका विवेक कुठित हो जाता है वही वह आलौकिक शक्ति की कल्पना करता है।

डॉ॰ सत्येन्द्र न लिखा है— लोकधम और लोक विश्वास परस्पर घनिष्ठ रूप स सबधित हैं। प्रत्यक प्रकार के लोक विश्वासो का सग्रह करना अपेक्षित है। ये विश्वास प्रत्येक क्षत्र में प्रचलित हैं। उन्ह 'अभिप्राय-अनुक्रमणिका (मोटिफ इन्डक्स) के रूप में वर्गीकृत करने की आवश्यकता है।"[1] लोक-जीवन क विश्वास धम पर आधारित होत हैं। आज भी लोग डाक्टर या वैद्य की दवा की अपेक्षा आलौकिक शक्तियो में विश्वास रखते हैं। य विश्वास परम्परागत हैं। शकुन विचार झाड-फूक गड तावीज टोने टोटके आदि उसे विरासत म प्राप्त अमोघ अस्त्र हैं। इन्हे निम्नाकित रूप म वर्गीकृत किया जा सकता है—

१ शकुन - अपशकुन	५ कामण या जादू-टोना
२ नजर लगना-राई नोन करना	६ देवता एव रोगो का सबध-चेचक
३ डायन का विचार	७ देवी-देवता विषयक विश्वास
४ गड-तावीज	८ लोक चिकित्सा एव विश्वास

१ शकुन - अपशकुन—

किसी विशष काय-व्यापार से मानव-मन अपने काय की सिद्धि अथवा असिद्धि का सबध जोडता है। यही सबध शकुन अथवा अपशकुन के रूप म माने जाते है। मनुष्य न न जाने कितने अनुभवो एव परीक्षणो के आधार पर इन्ह मान्यता प्रदान की होगी ? इसका अनुमान भी नही लगाया जा

१ लोक-साहित्य विज्ञान पृ॰ ५३५-५३६

जा सकता । इसमें तथ्य का होना न होना विवादास्पद है । इसकी परिभाषा देते हुए डॉ॰ सत्येन्द्र ने लिखा है—'शकुन शुभ परिणाम क द्योतक होते हैं । अपशकुन अशुभ परिणाम के द्योतक । य वस्तु व्यापारो द्वारा मिलन वाली भविष्य वाणियाँ हैं ।"[2] वस्तुत. शकुन स तात्पय है, भविष्य मे होने वाले मनोनुकूल काय का सकेत प्राप्त होना । य सकेत अग विशष के फडकने तथा पशु-पक्षियो के व्यापार पर निभर करत हैं । कौए स सबधित एक लोक विश्वास विचारणीय है । वियोगिनी नायिका क घर की मुडर पर कौआ आकर बैठ गया । वह उसस कहती है कि तू उड कर शकुन बता कि मर प्रवासी प्रियतम आयग या नही । गीत म इस ही मनोमुग्धकारी ढग स कहा गया है । श्रोता की सहानुभूति एव सवेदना की प्रषणीयता दशनीय है । नायिका अनुरोधपूवक कौए से कहती है कि *यदि मेरे प्रियतम घर आन वाल हो तो हे मेरे काग तू उड जा ।* यदि मरा प्रियतम आ जाय तो मैं तुझ खीर और शक्कर का भोजन करवाऊगी । तेरी चोच सोन से मढवा दूगी । तेर पैरो म घुघरू बाधूगी और गल म हार पहनाऊगी । यदि तूने उडकर शकुन बताए तो मैं जन्म जन्म तक तेरे गुणगान करूगी ।[3] यहाँ नायिका ने कौए को मेरा काग कह कर जो आत्मीयता दिखलाई है वह दशनीय है ।

एक दूसरे वियोग गीत म नायिका सावन की बदली स कहती है कि मैं मेडी (दूसरी मजिल का खपरेल स छाया कमरा) पर बैठ हुए काग को उडाते उडाते रुग्ण हो गई हू ।[4] प्रसिद्ध वियोग गीत प ना मारू' म भी जब प ना (प्रियतम) मारू को छाड कर विदेश चल जाते है तो वियोगिनी

---

२ लोक साहित्य विज्ञान पृ॰ ५३७

३ *उड उड रे म्हारा काला रे कागला जद म्हारा पीवजी घर आव*
खीर खांड को जीमण जागाऊ सान म चूच मढाऊ र कागा । उड
पगलियाँ म थारे बाँधू रे घूघरा गले में हार पहराऊँ रे कागा । उड ·
जो यू उड कर सूण बताव जनम जनम थारा गुण गाऊ र कागा । उड
—सकलित

४ ए सावण की भरी बादली ! यू कर दीज जाय ।
या बिन मरवण मादी पडगी अन्न पाणी न खाय ।
मेडी को काग उडाती, आमूडा रळखाती गोरडी र ।
बगो आव ढोला र ! बन की मारडी र ! —सकलित

नित्य-प्रति उठकर काग उड़ाती है।[5] वियोगिनी ही नही एक बहिन भी अपने भाई को बुलाने के लिए कौए से उड जाने की प्रार्थना कर रही है।[6] तात्पर्य यह है कि बहिन का भी यही विश्वास है कि यदि काग उड़ गया तो उसका प्रिय भाई अवश्य आ जायेगा। लोक गीतों के इन उदाहरण से यह सिद्ध हो जाता है कि कौए के उडने को लोक-जीवन मे शकुन माना जाता है। आने वाले व्यक्ति विशेष के लिए भविष्यवाणी करने वाला पक्षी माना जाता है। तुलसीदास जी ने भी इस विश्वास का उल्लेख किया है :—

बैठी सगुन मनावती माता।
कब ऐ है मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता।

—*गीतावली*

स्त्री की बायी आख का फड़कना भी शुभ-शकुन माना जाता है। 'आखडली' लोकगीत में आख फड़कने और काग के बोलने पर पत्नी, पति के आगमन की कल्पना करती है। वह सोचती है कि आँख फड़कना और काग का बोलना अतिथि के आने के सूचक है। ये दोनों शकुन हो रहे हैं, तो फिर कोई आकर यह सूचना क्यो नही देता कि वे आ रहे हैं :—

अम्बा म्हारी आखड़ली फरूकं ए
म्हारो काग करूके कोट्डयां ए
अम्बा म्हारी कोई न बतावे ए
जुग व्हाला जँवाई सा ने आवता।[7]

अपशकुन से तात्पर्य है, भविष्य मे मनोवाछित कार्य का असफल होना। इसका सबध भी विशेष कार्य-व्यापार से जोडा जाता है। किसी

---

५. बा'रा तो बरस बिताया जोवता थारी बाट।
थे तो जा बैठ्या पन्ना-मारू चाकरी, धण रो काई रे हवाल
नित उठ काग उडावती, परदेशी लाल थे तो जा बैठ्या चाकरी।
-संकलित

६. म्हारे घर रे ए भीतर वेल पसरी, आगण आमलियो मोड़ियो।
उड-उड रे कागा बैठ डाली, वीरो कद घर आवसी।
—राजस्थानी लोक गीत—स रानी लक्ष्मी कुमारी चूडावत, पृ० ६२

७. मरु भारती-वर्ष ११ अक २, आखडली लोकगीत के निर्माण की प्रक्रिया, ले. मनोहर शर्मा।

कार्य के आरम्भ में यदि छींक आ जाए तो यह मान लिया जाता हैं कि कार्य सफल नहीं होगा। यहा एक लोकगीत की पक्तियां प्रस्तुत की जा रही हैं, जिनमे युद्ध में जाने वाले वीर को युद्ध म जाने से रोकने का असफल प्रयास किया जा रहा हैं। उससे कहा जाता हैं कि तुम युद्ध भूमि मे मत जाओ क्योकि वहा काकी के पुत्रो स लोहा लेना होगा। फिर जैसे ही तुमने पागड़े में पाव दिया था उस समय छीक आ गई थी, अतः तुम झगडे में मत जाओ।[8] इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि छीक को अपशकुन माना जाता हैं।

राजस्थानी जन-मानस में यह अध-विश्वास प्रचलित हैं कि बालक के सौंदर्य अथवा स्वास्थ्य को देखकर जब कोई बुरी नजर वाली स्त्री उसकी प्रशसा करे तो वह बालक बीमार हो जाता हैं। इसी क्रिया का नाम नजर लगना है। रोई-नोन या 'लूण-मिरच' करना इसका उपचार माना जाता है। एक हालरिया (लोरी) गीत में इसका उल्लेख हुआ है। मा अपने बच्चे को लेकर बाहर सो ही थी कि किसी निपूती ने बच्चे को नजर लगा दी। यह न जाने कौन अणूती (विचित्र) रॉड थी जिसने कुदृष्टि रूपी बाण चलाया। माता ने तुरन्त उपचार हेतु नमक की सात कंकरियाँ और सात मिर्चे ली और उनको बालक पर इक्कीस बार वार कर आग मे डाल दिया। आग मे न तो नमक के जलने का तड़ोका हुआ और न मिर्च का धुआ। कुदृष्टि के प्रभाव से बालक सो भी नहीं पा रहा था, पर अब तुरन्त चुप सो गया। मातृ-हृदय बालक की एक-एक गति-विधि पर केन्द्रित रहता है न ?

---

८. ए मत जा झगडा मे झगडा म काकी का जाया रे।

--राजस्थान के त्योहार गीत--लेखक की अप्रकाशित पुस्तक, होलीगीत

९ लाला ने नेरवारण सूती, कणीक नजर लगाई कपूती।
ही कुण रांड असी अणूती, जणी मारिया नजर रो बाण।
सात लूण की काकरिया लीदी, सात राती मिरच्या लीदी।
लाल पर वारी चितरां कीधो, लीदी इक्कीस बार उतार।
आग म लूण मिरच नकवायो, तड़ीको लूण का न सुण पायो।
मिरच धूओ नाम नो आया, चट लाला न आ गई नींद।
गोरा-माजा रे हालरिया बार हावू आयो रे।

—राजस्थानी लोकगीत, स. श्री मोहनलाल, स्याम शास्त्री एव सावलदान आशिया –पृ०. २३-२४

भले ही हम इस पर विश्वास न करें, पर प्रत्येक माता का हृदय इस पर अवश्य विश्वास करता है।

विवाह के अवसर पर गाए जाने 'बन्नो' में भी नजर लगने जैसे अंधविश्वास का वर्णन हुआ है। वहां भावी वधू अपने वर से कहती है कि आप हर्षित होकर, ललककर सोनी की दुकान पर मत जाओ क्योंकि नजर लगने वाली है।[10] नव-वधू को नजर का कितना भय है।

एक गीत रूप कविता नायिका अपने प्रियतम को तालाब से पानी भर लाने के लिए मना कर रही है। कारण, तालाब पर पानी भरने जाने पर नजर लगने का भय है।[11] इसी कारण वह पानी लाने के लिए जाने को तैयार नहीं।

सामान्यतयः वह स्त्री डायन कही जाती है, जो किसी सुन्दर पुरुष-स्त्री अथवा बालक पर कुदृष्टि डालती है एवं परिणाम स्वरूप उसकी मृत्यु हो जाती है। एक स्त्री अपने पति को 'गैर' (गींदड) नाच में विशेष रूप से सज-धज कर जाने से और विशेष त्वरा पूर्वक नाचने से मना करती है। उसे भय है कि कहीं उसके प्रियतम को कोई डायन डकार न जाय।[12] उसकी आशंका इसी अंधविश्वास के कारण है। प्रिय हृदय पाप-शंकी होता है, फिर वह क्यों न यह आशंका करे? यही विचार 'पन्ना-मारू' नामक प्रसिद्ध राजस्थानी वियोग-गीत में भी मिलता है। इसमें भी प्रियतमा के पाप-शंकी

१० बना ललक सोनीडा रे मत जाय
सोनीडा री नजर लागणी
म्हारो बनो हजारी गुलरो फूल
म्हारी बनडी ओ आभा बिजली। —संकलित

११. सागर पाणीडे नहीं जाऊँ,सा नजर लग जाए।
म्हारी हीगलू री टीकी ए, गरद भर जाए।
म्हारी सोसनी साडी को ढाला रंग उड जाए। —संकलित

१२ दोय-दोय वणिया लेर भंवर गैर नाचवा चाल्या
घरा घारी परणियोडी ओलम्बिया झाडे रे धीरे नाच
डाकणिया डकराय राले रे धीरे नाच
—राजस्थान के त्योहार गीत (लेखक की अप्रकाशित पुस्तक) के होली गीतों से

हृदय को भय है कि कहीं उसके प्रियतम को विदेश में डायनें निगल नहीं जायें। अतः वह उनसे रुकने का अनुरोध करती है।[13]

रोग, पीड़ा आदि विभिन्न दुःखों से छुटकारा प्राप्त करने के लिए गण्डे-ताबीज अथवा मादलिया-चौकी अभिमंत्रित करवाये जाते हैं। अभिमंत्रण की प्रवृति सार्वभौम है। टोना-टोटका करने के अन्तर्गत भी इसे रखा जा सकता है। जन-जीवन में इसका बड़ा प्रचलन है। 'पन्न-मारू' गीत में नायिका द्वारा डायनों के भय से पति को सिंध देश जाने के वर्जन पर पन्ना का सोनी की दुकान से मादलिया अभिमंत्रित करवाने का उल्लेख मिलता है।[14] इससे स्पष्ट है कि डायन का भय मादलिया अभिमंत्रित कराने के बाद समाप्त हो जाता है। मादलिया—सोने, चाँदी अथवा ताँबे का बना होता है। अभिमंत्रण करने वाला व्यक्ति कोई मंत्र आदि लिखकर विभिन्न वस्तुओं के साथ इसे बंद कर देता है। फिर इसे पूजा के धूएं से सिक्त किया जाता है और जिस व्यक्ति को कोई पीड़ा होने की संभावना रहती है उसके गले, कमर अथवा भुजा पर बाँध दिया जाता है। ऐसा विश्वास है कि इससे डायन की नजर भूत-प्रेत, रोग आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यह एक प्रकार का रक्षा कवच है।

मादलिया का आकार लम्बा और गोल होता है और ताबीज का चौकोर। इन दोनों में धागा पिरोने के लिए कड़ी लगी रहती है। रोगों आदि ही नहीं ओलूं (स्मृति) तक को भी अभिमंत्रित कराने की परम्परा है। एक नवविवाहिता पत्नी अपने पति से कहती है कि उसे अपने पीहर की याद (ओलूं) बहुत आ रही है। अतः पीहर भेज दो। किन्तु रसिक प्रियतम

---

१३. पन्ना थेई चाल्या परदेश, पर धरती रो पाणी लागणो।
पन्ना सिंधों गहरो डाकणियों रो देस, गटको करजामी - (म्हारा) पन्ना रे जीव रो।

—राजस्थानी लोकगीत—सं. शिवसिंह चोयल, पृ० ६७,

१४. गोरी ए जाओ-जाओ सोनीड़ा री हाट,

मादलियो मतरावो सैण पन्ना रा जीव रो

गोरी म्हारी ए म्हाने हुग-हुम दोनों म्हाने सीख वही. पृ० ६७

नव-वधू को छोड़न के लिए कैसे तैयार हो जाता। अत वह उस ओलू को ताबीज म कीलीत अथवा अभिमंत्रित कराने की बात कहता है।[15]

जादू या टोने को राजस्थान मे कामण करत हैं। एसा विश्वास है कि टोने-टोटके की जानकारी रखन वाले लोग इसके प्रभाव से किसी भी व्यक्ति को बीमार अथवा वश में कर सकते है। टोना सबध मे प्रसिद्ध नृ-विज्ञानी श्री जम्स फ्रेजर का कथन है— टोना मस्तिष्क की अत्यन्त सीधी-सादी और अत्यन्त प्रारभिक प्रक्रियाओ का भ्रामक उपयोग ही है। दूसरे शब्दो म सादृश्य और सबद्धता के सहारे विचारो की सगति विषयक मानसिक प्रक्रिया का भ्रामक उपयोग टोने म दिखाई पडता है। दूसरी ओर धम मानता है उन चेतन और वैयक्तिक कर्त्ताओ को जो प्रकृति के दृश्य आवरण के पीछे रहते हैं। और जो मनुष्य म ऊंचे होते है।'[16] डॉ० सत्येन्द्र न 'लोक साहित्य विज्ञान' म टोने की चर्चा करते हुए कहा है— मैजिक या टोने के दो भेद और किए जाते हैं—ब्लैक मैजिक (काल टोने) जो अहितकर शक्तियों का आह्वान कर दुष्कृत्य करान के उपयोग म आते है-मूठ चलाना आदि। ह्वाइट (श्वेत) मैजिक भले कार्यों के लिए।'[17]

राजस्थानी कामण शब्द वास्तव म काल जादू अथवा ब्लेक मैजिक का पर्याय है। कामण का जिन गीतो मे उल्लख है, उनमे कामण वर को वश म करने के लिए किये जाते हैं। मारण, उच्चारन एव वशीकरण के लिए भी कामण किया जाता है। लोकगीतो म कही तो वधू स्वय कामण करवाकर वर को वश मे करवाती है तो कही स्वय कामण उतरवाने के लिए सचेष्ट दिखाई देती है। उसे आशका है कि वर पर किसी न कामण कर दिया है तभी वह उदास है। गीत म वर्णित है—वधू कहती है कि मेरा नवल वर क्यो मुरझाया हुआ है ? इस पर किसने कामण कर दिया ? फूल जैसा मेरा वर सुन्दर-मुरझाया हुआ है, इस पर किसने कामण किया ? कामण करने

१५ सोढा जी राणा म्हाने म्हारे पीवर म्हेलो
ओलूडी आये ओ म्हारा बाप री
सुन्दर गोरी ए ओलूडी थारी मादलिये मतराय
सातो रो ए बेनड। राजस्थानी लोक गीत सम्पादक शिवसिंह चोयल-पृ० ५२-५२

१६ गोल्डन-बॉ-सर जम्स-फ्रेजर, पृ० ५४

१७ लोक-साहित्य विज्ञान –डॉ० सत्येन्द्र, पृ० ४७४

वाली जानी-पहचानी सोनी की बेटी ही हो सकती है। अत वह आगे कहती है कि उस जो कुछ भी नियम-पूवक दिया जाता है, वह देकर कामण ढील छुड़वाओ। उस रुपए देकर कामण ढील छुड़वाओ। सोनी की पुत्री ही नही इसके स्थान पर रंगरेज की बेटी, दरजी की बेटी आदि का भी उल्लेख किया जाता है। जब यह निश्चित नही कि कामण किसने किए हैं तो बेचारी वधू भयभीत होकर सभी का नेग चुकवाकर कामण छुड़वाने को कहती है। वह अपने जीवन सर्वस्व को उदास देखकर कितनी चिंतित हो जाती है और उनसे तुरन्त कहती है कि मैं अपने घूघट की छाया करती हूँ आप इसकी छाया-छाया मे चाहिए।[18]

इसके विपरीत कुछ गीतो मे वधू, वर को वश म करने के लिए कामण करवाती है। एक गीत म कहा गया है कि हे नादान! मैं आज कामण करूँगी अत शान्त रहो। थोड आज करूँगी, थोड कल करूँगी। कामण करके मैं तुम्हे अपन काकाजी की पोल (मुख्य द्वार) पर द्वारपाल रखूगी।[19] उक्त दोनो गीतो मे कामण का दुष्प्रभाव दिखाया गया है। एक म वर पर कामण करन से वह मुरझा गया है तो दूसरे मे वह कामण के प्रभाव से वर को वधू वश म करन की बात करती है। यों आज विज्ञान क युग म ये बात हास्यास्पद लगती हैं किन्तु इनमें लोक मानस का विश्वास है। हाँ, आजकल इस प्रकार के निकृष्ट साधन का प्रयोग प्राय नही किया भी जाता है।

---

१८ म्हारो नवल बनो कुमलावे जी कामण कुण कीदा
म्हारो फूल वनो कुमलावे जी कामण कुण कीदा
वा तो सोनीडा री बेटी जाण जुगारी रे कामण वी कोदा
म्हारा कामणियाँ रो नग चुकावो रे कामण ढीला छोडे
म्हारा कामणिया रा रूपया चुकावो रे, कामण ढीला छोड
म्हारा दुपट्टा की छाया छाया चालो रे, कामण कुण कीदा
म्हारा घूघटिया की छाया छाया चालो रे, कामण कुण कीदा—सकलित

१९ धीरा रा रे नादान, कामण आज करूगी
थोड़ा सा आज करूँगी, थाड़ा सा काल करूँगी
म्हारा काका सारी पोल चाकर राखूगी
चाकर राखूगी, छडीदार राखूगी
—राजस्थानी लोकगीत (भाग ६)—स० मोहनलाल शास्त्री, पृ० ५७

६, देवता एव रोगों का सबध

लोक विश्वास है कि रोग महामारी दवी प्रकोप के कारण फलती है। ई० ओ० मार्टिन का कथन है-- भारत की यह एक सामा य ग्रामीण धारणा है कि रोग और अस्वस्थता आदि प्राकृतिक कारणा के परिणाम न होकर मात्र-देवियां जादू टानो और नजर आदि क फल स्वरूप होते हैं। इसका बडा सीधा सा कारण है। जैस कि विशूचिका जो इतना आकस्मिक और उग्ररूप स फैलता है और चेचक जो कि इतना भयानक और विकृति कारक है किसी देवी या देवता क ही निमित्त माना जाता है'।[20] लोक विश्वास है कि न केवल देवता बल्कि मानवेत्तर शक्ति के कारण रोग आदि फैलते हैं उन्हे दूर करन के लिए देवता सहायक सिद्ध होते हैं। आज भी गावा म लोग रोगी की दवा करन की अपेक्षा देवता को सिर झुकाना या देवता के नाम का धागा रोगी क गल म बाँधना ही प्रयाप्त समझते हैं। तात्पय यह है कि रोग का कारण एव निवारण दोनो देवताओ स अथवा ऐस ही विश्वास से सबधित माना जाता है। राजस्थान म साँप के काट व्यक्ति का कभी औषधालय नहीं ले जाते उन्ह प्रसिद्ध देवता श्री तेजा जी महाराज के यहाँ ले जान की प्रथा है।

शीतला या सेडल माता चचक की देवी मानी जाती है। विश्वास है कि इस देवी के कोप के कारण ही चचक फलता है। शीतला के पूजार्थ चत्र कृष्णा सप्तमी को शील सप्तमी का त्योहार मनाया जाता है। ताकि माता प्रसन्न रहे और रोग नही फैले। जब शीतला का प्रकोप होता है तो बालक की मा शीतला-माता स अनुनय करती है कि मा मेरे बच्च की रक्षा करना। एक लोकगीत मे बालक को शीतला क प्रकोप के आसार दिखाई दिये तो तुरन्त मातृ हृदय न शीतला मा को जाकर सूचना दी जैसे रोगी की रिपोर्ट डाक्टर को दी जाती है। माता की शरण म आन पर वह निराश नही लौटती है। उसे माँ न आर्शीर्वाद दिया कि म छत्र छाया करूँगी। माता का यह आशीर्वाद रोगी क लिए पर्याप्त है। धीरे धीरे बालक की स्थिति के सधरन का भी उल्लेख गीत मे किया गया है।[21]

---

२० द इलसट्रेटिड विकली ऑफ इडिया -मई २५ १६५८ शीतला गोड्स आफ स्मालपाक्स ए० सी० राय चौधरी।

२१ थे वयू डरपो जोगण्यां ए करूँगी छतर की छाय।
जद म्हारी माता टठण लागी मक्के को सो बीज।
--राजस्थानी लोकगीत-स० रामसिह आदि पृ० १८

शीतला माता की तरह ही तेजा के सबध भी लोकविश्वास श्री तजा महाराज से सबधित एक गीत उन्हे काल नाग के काटने पर उसके विष को उतार देने के लिए प्रार्थना की गई है।[22] लोगो का यह विश्वास है कि तजा जी के यहाँ सर्प का दशित व्यक्ति निरोग हो जाता है।

पुत्र-प्राप्ति की अभिलाषा की पूर्ति म देवी-देवताओ का ही श्रेय माना जाता है। भैरु जी क एक गीत मे बध्या उनस पुत्र देन की प्रार्थना करती है।[23] इसी प्रकार पीरजी के एक गीत म भी प्रश्न किया जाता है कि आपस बध्या क्या मागती है और बालक की मा क्या मागती है ? उत्तर दिया गया है–बध्या पुत्र मागती है–और बालक की माँ अन्न-धन।[24] लोक गीतो म हिन्दू-मुसलमान अथवा धर्म या सम्प्रदाय का कोई भेद नही माना गया है। सभी देवताओ के प्रति समान भावना अभिव्यक्त हुई है।

पुत्र प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य मनावाछित फल, रोजगार आदि देने वाला भी देवताओ को ही माना जाता है। पीर जी क एक और गीत मे एक स्त्री उनस प्रार्थना करती है कि मैं कल से खडी हूँ आप रोजगार दीजिए।[25] इस प्रकार देवताओ को जनता को रोग मे मुक्त करने वाले, मनोवाछित फल देन वाले आदि भी मानती है।

ऊपरी विवेचन मे राई नोन करना, गण्डे-ताबीज, जादू-टोना, चेचक रोग म मुक्ति व उपचार आदि विभिन्न सदर्भों म चिकित्सा के सबध मे

२२ चोखा रदाऊ रज रे ऊजला, हरिया मूँगारी दाल
लहर उतारो काला नाग री।
--राजस्थानी लोकगीत (भाग २) म० शिवसिह चोयल पृ० ६

२३ पाटी का रे भेरू लाडला गोद भरावलो काई
म्ह लो थारे शरणे आई रे म्हारा भेरू गोद भरावलो काई रे।
--सकलित

२४ काई मागे रूडी बाझडी ? काई मागे बालुडा री माय।
बटा तो मागे रूडी बाझडी ! अन्न-धन बालुडा री माय।
--सकलित

२५ पाचू पीरो का हाथ मे गुलाब की छडी
दो न रूजगार वदी काल की खडी
--सकलित

प्रचलित लोक-विश्वासो का उल्लेख किया जा चुका है। ये विश्वास किसी तर्क की कसौटी पर परखे नही जा सकते। 'उधो मन माने की बात' मात्र है। मन्त्र, टोना-टोटका के प्रति आज भी लोगो की वही आस्था एव विश्वास है। चूकि इन विश्वासो के पीछे कोई तर्क सगत कारण नही प्रस्तुत किया जा सकता अत उन्हे हम अध-विश्वास कहते है।

यहाँ विभिन्न गीतो के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए राजस्थान जन-जीवन मे प्रचलित अध-विश्वासो का उल्लेख किया गया है। ये अध-विश्वास भारतीय-सस्कृति द्वारा विरासत मे मिली वह सम्पति है जिसे सामाजिक सम्पत्ति समझ कर आज भी भारतीय जनता छोडन को तैयार नही है। ये अध-विश्वास भारतीय जनता के उस समय के साथी एव सम्बल हैं, जब उसका विवेक कुठित हो जाता है, उसका सामर्थ्य जवाब दे जाता है। अपने ऐसे अभिन्न मित्र एव सम्बल को ठुकराना सहज नही है ? □

लोकगीतों में देवर–भाभी के सम्बन्ध

भारतीय जन-जीवन एव अभिजात साहित्य मे देवर-भाभी के सम्बन्ध आदर्श माने जाते रहे हैं। वाल्मीकि ने रामायण मे जिस आदर्श की स्थापना की उसी को उत्तरकालीन कवियों ने अपनाया। वाल्मीकि रामायण मे जब राम, लक्ष्मण जी से सीता के आभूषण पहचानने की बात कहते हैं तब लक्ष्मण राम से कहते हैं कि मैं केयूर और कुण्डल को नही पहचानता हू। मैंने कभी सीता जी के शरीर को देखा ही नही है। मैं तो उनके नूपरो को ही पहचानता हू, मैं नित्य उन्हे प्रणाम करता था, इसलिए।[1] एक श्लोक मे सुमित्रा ने लक्ष्मण से सीता को मातावत् सम्मान करने का भी आदेश किया है।[2] यही भारतीय आदर्श है देवर-भाभी के सम्बन्धो का।

जन-जीवन मे इसी आदर्श की रक्षा की बात कही सुनी जाती है। परन्तु यथार्थ यदि आदर्श स भिन्न न हो तो आदर्श कैसा? फिर लोक गीतो मे तो यथार्थ परक जन-जीवन अधिक मुखरित होता है। लोक गीतो मे देवर-भाभी के मधुर सबध ही अधिक चित्रित हुए हैं। सर्वप्रथम एक राजस्थानी गीत की पक्तियाँ लीजिए। देवर, कुएँ पर पानी भरने गई भाभी स कहता है कि कुए की मुण्डेर पर पडा काँच-कँघा लेती आना। भाभी कहती है कि मेरे सिर पर जल से भरा घडा है, अतः मैं झुकने मे असमर्थ हूँ फिर मुझे अपने पति का भय भी है।

गीत मे प्रतीकात्मक ढग से सारी बात कही गई है। गावो मे काच-कघा तो छैले रखते हैं। फिर जिस कुए पर स्त्रिया पानी भरने जाती हैं, वहा काच-कघा रखने वाला व्यक्ति तो निश्चित ही छैला होगा। देवर का भाभी मे काच-कंघा मगवाना प्रणय प्रस्ताव का प्रतीक है। इस प्रतीक के

---

१. केयूर नैव जानामि, नैव जानामि कुण्डले।
नूपरावेव जानामि, नित्य पादाभिवन्दनात्॥

२. राम दशरथ विद्धि, मा विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवी विद्धि, गच्छ तात, यथा सुखम॥

भरा घड़ा न हो और हाथ मे साहुनी रग की चूडिया न हो तो शायद विरोध की आवश्यकता ही न हो।

एक अन्य गीत मे भाभी से उजली अंगरखी पहरने वाले अपने देवर के कह रही है कि यदि तुम मेरे साथ रहो तो तुम्हे घाट मे घी खिलाऊँगी। दोपहरी के भोजन मे चंदलिया की सब्जी लिखाऊँगी।[1] भोजन मे देवर को पौष्टिक वस्तुएँ देना भाभी के प्रेम को प्रदर्शित करता है। 'देवर म्हारो' कहने मे जो ध्वनि है, उसमे व्यजित आत्मीयता को हृदय से समझने की आवश्यकता है। यहाँ भाभी ने अपने हृदय का सारा प्रेम उडेल दिया है।

एक गीत मे देवर भाभी से अगिया सिलवा देने की बात कहता है। न केवल वह अगिया सिलवा देने का प्रस्ताव रखता है, बल्कि उसमे गोटा दिला देने को भी उत्सुक है। किन्तु भाभी यहा भी भाई के लडने के भय से प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती हैं।[2] यदि भाई का डर न हो तो भाभी को प्रस्ताव मान्य हो सकता था। यहा रगीला देवर कहना और भाई का भय होना वे सूत्र हैं, जिनमे अन्तरग और आत्मार्पित सम्बन्धो का आभास मिलता है।

जहा भाभी को देवर से इतना स्नेह है, वहा देवर को भाभी से भी उतना ही प्रेम है। एक लोक गीत मे भाभी को भैंया पीटते हैं। भाभी के सहायतार्थ देवर तुरन्त दीवार कूद कर आता है। देवर के अतिरिक्त भाभी के प्रति इतना सौहार्दपूर्ण व्यवहार और कौन कर सकता है? यथा —

"डोली डाक देवरियो आयो
तो आयो म्हारी भीड बटावाने
म्हारी मन पीयर जावा ने। (सकलित)

---

१. म्हारे भेलो रेवे देवर, घाट मे घी घालू रे।
दो पारा री रोटी मे चंदलियो घालू रे, देवर म्हारो रे।
वावा देवर म्हारो रे उजली अगरखी वाला रे।
—लेखक के सग्रह से

२. यू कैवे भाभी थारे अगिया सिवा दू।
अगिया के थारे गोटो दिरा दू, लेले ! ले-ले !
नहीं नहो रे रगीला म्हारा देवरिया !
थारो तो दादो भाई म्हासू लडसी रे !
—लेखक के सग्रह मे

एक गीत में वर्णित है कि नायिका के पाव म कांटा चुभ गया। काटा चुभने पर नायिका का पति पूछता है कि तुम्हारा काँटा कौन निकालेगा और काँटा निकालते समय तुम्हारे पाव कौन पकड़ेगा? नायिका को अपने देवर पर पूर्ण विश्वास है और उत्तर म वह कह देती है कि देवर मेरा पाँव पकड़ेगा। आगे वह यह भी कहती है कि देवर के इस आभार का बदला चुकाने के लिए मैं उसका विवाह अपनी छोटी बहन से करवाऊगी।[1]

मेले म देवर भाभी के साथ घूम रहा है। भाभी उसस छत्तरी लगान की बात कहती है —

शीतला को मेला, काई रोज भरे,
छत्तरी ताणरे देवरिया भाभी तावडे बले।

वह देवर स यह भी कहती है कि शीतला का मला रोज नही आता, तुम नल खोलकर पानी पिलाओ। यथा—

शीतला को मलो काई रोज के भरे,
टूटी खाल र देवरिया भाभी तसया मरे।

इसी गीत म आग वह कहती है कि मैं खेत म पानी देन क लिए खडी हूँ। हे देवर! तुम कुआ चलाते हुए राग अलापो। यथा—

भरियो बोल रे देवर पाणत म ऊबी।।[2]

यहाँ एक बात स्पष्ट कहनी ही होगी। 'छतरी ताण' 'टूटी खोल' 'भरिया बोल' य सब यहा काम-प्रतीक हैं। इन काम प्रतीको की गहराई म जाकर ही देवर भाभी क मधुर सम्बन्धो का अनुमान किया जा सकता है। ये परिहास क निमित्त व्यक्त हुए हैं। मात्र इनके आधार पर अवैध सम्बन्धो की कामना कर लेना बमानी होगी।

---

१ पहग्या ऊजड बाट कांटा लाग्यो केर का
कुण्हा थारो ए कुण थारो ए भालाराणी पकडे ए पाव
X बयान लुँ X X
देवर खाने गशी, पना मारू पकडे जी पाव
X पापो X X
देवर न छेड़ा जी, बैण, बाई जो ने ओरंग चुनडा।
—मरू भारती, वष ११ अक ४ पृ० ३०

२ सकलित

एक दूसरे राजस्थानी गीत में भाभी खेत में पानी पिलाने के लिए खड़ी है। देवर कुँआ चला रहा है। भाभी देवर से कहती है कि पाणत में (पानी देने के लिए) खड़ी हूँ अतः तुम कुआ धीरे चलाओ। वह आगे कहती है कि बाजरे के खेत में पानी दे रही थी कि पाँव में काटा चुभ गया। हे देवर! तुम्हारे खेत का गन्ना मुझे बहुत मीठा लगता है।[1] यहाँ भी गन्ने का मीठा लगना, धीरे हाकने का अनुरोध काम-प्रतीक ही हैं जिनसे यौन-सम्बन्धों के संकेत होते हैं।

भाभी देवर से कहती है कि देवर मेरे लिए सालू खरीद दो। आबू के पहाड़ों में चलें। देवर कहता है कि हाँ मैं तो खरीद देता हूँ, मगर तुम चलो भी। भाभी पुनः कहती है कि मुझे तुम्हारे भैया का डर लगता है, कैसे चलें? देवर कहता है कि मेरा भैया तो लड़ाई में गया है।[2] यहाँ सालू खरीदने और आबू के पहाड़ों में चलने का प्रस्ताव भाभी ही देवर के सम्मुख रखती है। फिर स्वयं ही पति के भय के कारण जाना भी नहीं चाहती है। यदि सम्बन्ध पवित्र होते तो बताइये क्या भाभी को पति से डरने की बात नहीं आती।

देवर का उपालम्भ भी भाभी के लिए कष्टप्रद होता है। वह अपने देवर के लिए रोटी लेकर जा रही है। मार्ग में धूल बहुत है। अतः उससे तेज नहीं चला जा सकता। उधर देवर भूखा है और प्रतीक्षा कर रहा है। वह जाते ही उपालम्भ देगा और आवाज कसेगा।

---

१ चार चार बलादां की जोड़ी ढाणा माये ऊबी
धीरे हाक रे देवरिया भाभी पाणत मे ऊबी
बाजरा का खेत में पाणत करता भागा रे काटो
माठा लाग रे देवरिया थारी नाडे रा साठो ॥

(संकलित)

२ सालू डा मोलाद देवर आबू का पाडा में चाला।
मालूडी मोला दू भाभी पेर तो सरी आबू का पाडो में चाला।
म्हाने डर परणियाँ को लाग देवर म्यां न चाला रे
म्हारो तो भाई भाभी लड़ाई में गिया ए।

(संकलित)

होले-होल हालू म्हारा मेरिया मे धूका रे ।
थोडो होल हाल म्हारा दवर बूगो रे, देला ओलम्बिया ।
बाबा दना आलम्बिया, मारना हेरा रे, दला ओलम्बिया ।।[1]

यहा एक ओर दवर क उपालम्भ का भय और दूसरी ओर मार्ग की धूल भाभी क हृदय क प्रम को व्यजित कर रहे हैं । प्रेम का 'इजहार' इससे अधिकस्पष्ट शब्दा में किया भी नही जा सकता ।

लोक गीतो म देवर-भाभी प्रम एव सौहार्दपूर्ण व्यवहार का ही उल्लेख सवत्र नही है । एक गीत मे देवर भाभी की पुत्री के विवाह के समय उसके भाई द्वारा मायरा लकर न आने पर व्यग करता है । परिणाम स्वरूप भाभी बचारी घर के बाहर खडी भाई के मायरा लेकर आने की प्रतीक्षा कर रही है ।[2]

एक स्थान पर भाभी अपन देवर की तुलना अपन पति से करती है ।[3] देवर एव भाभी के सम्बन्धो का लोक गीतो मे विस्तार से वर्णन मिलता है । ये वर्णन विविधता युक्त हैं । एक अन्य गीत मे नायिका का पति विदेश जा रहा है। नायिका उसम पूछती है कि आप मुझे किसके भरोसे छोडकर जा रहे हो तो सान्त्वना दने के उद्देश्य से पति उसे अपने छोटे भाई के घर होने की बात कहता है । इस पर वह कहती है कि तुम्हारा भाई तो युवक है और महलो मे ताक-झाक भी करता है ।[4] इस प्रकार देवर की शिकायत भी भाभी पति स करती है । एक अन्य गीत म भी देवर द्वारा भाभी को गवाक्ष म बैठे निरखन का प्रसग है ।[5]

१ राजस्थानी लोक गीत—म शिवसिंह चोयल, पृ० ६४
२ वीरा ऊभी मोग्यिा रे बार,
दवर मूसा बोलिया ।
—वही पृ० ८१
३ दवर जी सरीखा ढोगा पातला ।
—राजस्थानी लोक गीत—पुरुषोत्तम मेनारिया पृ० ५६
४ ढोला थ चाल्या परदेश भलावण कुण ने दीधी ओ ?
सुन्दर गोरी घरिए म्हारो छोटो वीर ए ।
ढोला थाका वीरो को' जे जोध जवान
वो महला झाका झाक जो राज । —सकलित
५ गोरवा बैठो देवरियो भाभी न नरखेरे, लीला खरबूजे
—सकलित

राजस्थानी लोकगीतों मे ही नहीं गुजराती गीतों मे भी देवर-भाभी के इन सम्बन्धो के चित्रण प्राप्त हैं। एक गुजराती गीत देवर भाभी को सौभाग्य शृंगार दिखाने के लिए बाध्य कर रहा है, यथा—

"आवी आवी सासरिया नी सीम, जासे ने देरे(देवर) झगडो माडयोरे
देखाड लाण कंकु ने काजल, देखाड चम्पा बरणी चूंदरी रे।
देखाड़ तारा नव रगा चीर, देखाड पुलम केरी ओढनी रे।
देखाड नारी सोपारी एल चडी, देखाड लीले रा लेवी गडारे।[1]

देवर-भाभी की कुचेष्टाओ के वर्णन न केवल राजस्थानी, भोजपुरी बल्कि गुजराती लोक गीतों में भी मिलते हैं। कुरु प्रदेश के गीत भी इसके अपवाद नहीं हैं। यथा—

'कोठी भरी कसूम कोरे, कोई कर लेगा पिहान,
खोलन वाला है नही, कोई देवरियो नादान रे।[2]

कुरु प्रदेश की इन्ही पक्तियो से मिलती हुई पक्ति मे डा० सत्येंद्र जी ने 'व्रज लोक साहित्य का अध्ययन' मे भी उद्धृत हैं—

दिल्ली शहर बाजार में उलटो टंगी कमान।
खचन हारो घर नही देवरिया नादान।
कारी परि गई रजना। (पृ० १८०)

एक में कोसुम की कोठी को खोलने वाले का अभाव है तो दूसरे में कमान को खीचने वाले का। दोनों मे पति के अभाव का उल्लेख किया गया है। पति के अभाव मे देवर भी खोलने एव खीचने के कार्य सम्पादित कर सकता था, किन्तु विवशता यह है कि वह अभी नादान है।

डा० सत्येन्द्र जी ने भी 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन' मे देवर भाभी के इसी प्रकार के सबधो का उल्लेख किया है—

"देवर के पिछवार राचन मेहँदी वारी लाला हम बई री'—भाभी मेहदी सूतने गयी। हरे-हरे पत्ते महदी के उन्होंने उन्होंने सूते, उनके हाथ लाल हो गये। बिछुओ की झनकार सुनकर देवर भी वहा पहुच गया। भाभी के लाल हाथ देखकर वह भी उसके पीछे चल दिया। भाभी अपने मायके गई, देवर भी बुलाने पहुच गया। भाभी अपनी मा से कहती है कि देवर के साथ मत

१ रूढियाली रात—(भाग ४) पृ० ४७
२. जनपद, खण्ड १, पृ० ८५

भजो। मा कहती है—कि वे एक ही बाप के बेटे हैं। 'व न भए तो वे भए'। वह उसके साथ ही भज देती है। अब वह विवश है। देवर के हाथ में है। ''रस-रस लीयो निकारि- फाक फोक मोकू रह गयो जी।' उस स्त्री ने पति से कहा। जब पति ने कहा कि 'अब के बदाळगो ज्वार बदल के बदले करि लऴजो।" तो वह उत्तर देती है! "तुम मेरे नाह कुनाह, तुम हो जेठ वे कुल वधू।' (पृ० १७८) । इन पंक्तियों में तो स्पष्ट ही देवर भाभी के अवैध संबंधों का उल्लेख हुआ है। साथ ही भाभी की माँ तथा पति को इससे कोई एतराज भी नहीं लग रहा है।

बड़ा भाई अपने छोटे भाई पर बड़ा विश्वास करता है, किन्तु छोटा भाई उस विश्वास का और भारतीय आदर्श को ठुकराता हुआ ही प्रतीत होता है। बड़े भाई के इस विश्वास का उदाहरण एक राजस्थानी लोक गीत में देखिए—

मू थान बरजू सायबा पाली जाबा छाड दी,
गोरी ने मीणा ले जेला, सुन्दर ने मीणा ले जला।
थू मत डरपे ए गोरड्या, नखरियाला देवर लारा ए,
हाथों में तखरियो राख, कड़ियाँ में कटारिया ए।

(संकलित)

जब नायिका ने पति को पाली जाने से मना करते हुए कहा कि आप पाली जाना छोड़ दो क्योंकि पीछे से तुम्हारी गोरी को, तुम्हारी सुन्दरी को मीणे (जाति विशेष) ले जाएंगे। तो पति ने सुन्दर देवर के घर होने की बात कही जो हाथों में तलवार रखता है और कमर में कटार। परन्तु उक्त गुजराती, भोजपुरी, राजस्थानी आदि गीतों के उद्धरणों से यह स्पष्ट हो चुका है कि देवर भाभी, इस विश्वास को ठुकराते ही हैं।

एक राजस्थानी गीत में बताया गया है कि नव वधू ससुराल जाते समय यह निश्चित करती है कि यदि उसे छोटे भाई की स्मृति आई तो वह अपने छोटे देवर को पास रखेगी।[1] तात्पर्य यह हुआ कि वह देवर

१ छोटा भाया की मन में आवे,
छोटा देवर ने राखोगा पास
अम्बा म्हारी दूरी दीनी ए।
मरु भारती वर्ष १२ अंक ३ पृ० ४

को अपने छोटे भाई के समान ही मानती है। यही मान्यता समाज में भी प्रचलित है। देवर को भाई के समान ही समझा जाता है। नव-वधू जब पति से पीहर भेज देने को कहती है और कारण बताती है कि मेरे छोटे भाई की स्मृति आती है, तो उसका पति कहता है कि तुम अपने देवर को देखकर छोटे भाई की स्मृति का निवारण करो। यथा--

'सुन्दर घण ओलूँ थारी परी ए निवार
चंपक वरणी वीरे जी री ओलू देवर भागसी।[1]

समाज की मान्यता यही है कि देवर-भाभी के सम्बन्ध भाई-बहिन के हैं। किन्तु मान्यता तथा यथार्थ में कितना अंतर है यह ऊपरी अंकित उद्धरणों से स्वयं स्पष्ट है। एक और उदाहरण देखा जा सकता है जिसमें नायिका देवर को अपना भाई ही मानती है—

यथा--
देवरसा आप ही म्हारा वीर
ज्यूं आवियाज्यूं जावियो जी राज।[2]

इस प्रकार देवर-भाभी के सम्बन्ध लोक गीतों में पवित्र एवं अपवित्र दोनों रूपों में आये हैं। जब हम देवर-भाभी के अवैध अथवा यौन सम्बन्धों की बात कहते हैं, तो यह कटु सत्य कड़वी दवा की भांति हमारे गले नहीं उतर पाता है।

डा० कृष्ण देव उपाध्याय ने अपने शोध प्रबन्ध 'भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन" में रामायण में वर्णित देवर-भाभी के सम्बन्धों की दुहाई देकर यह कहा कि वास्तव में देवर-भाभी के अवैध सम्बन्ध निम्न जातियों में ही प्रचलित हैं। किन्तु हमारे दृष्टिकोण से डा० उपाध्याय ने सत्य को ठुकराया है। यह बात लोक गीतों के उक्त उदाहरणों से स्पष्ट की जा चुकी है। पुनः डा० उपाध्याय भी इस बात का स्वीकार तो करते ही हैं-- परन्तु लोक गीतों में देवर और भावज के सम्बन्ध को हम भारतीय आदर्श के अनुरूप नहीं पाते। इन गीतों में भावज और देवर के अनुचित प्रेम का वर्णन प्राप्त होता है।[3] इस सम्बन्ध में डा० चिन्तामणि

१ राजस्थानी लोक गीत सं हनुवंत सिंह देवड़ा, पृ० ८४
२ राजस्थानी लोकगीत स० रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत पृ० ४६
३ भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० २८५

उपाध्याय का कथन भी द्रष्टव्य है--'लोक गीतों में दवर-भौजाई की प्रणय-कथाएं तो प्रसिद्ध ही हैं।"[1]

डा० कृष्णदव उपाध्याय इन अवैध सम्बन्धो का कारण बताते हुए कहते हैं—'हमारी ऐसी धारणा है कि पीछे क धर्मशास्त्रकारों ने जो नियोग की व्यवस्था दी वही इसका मूल कारण है।" यहा भी डा० कृष्णदव जी द्वारा इन सम्बन्धो को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आलोक में देखा गया है। हम अपने पुरान चश्मे को उतारकर उदारवादी दृष्टिकोण अपना कर यह स्वीकार करने मे क्यो सकोच करें कि देवर भाभी को समाज में हँसी-मजाक करन की जो स्वतन्त्रता प्राप्त है उसी के कारण ये सम्बन्ध पनपते हैं। फिर सर्वत्र ऐसा हो ही यह आवश्यक नही है। परन्तु जहां भी हैं वे मात्र नियोग व्यस्था क कारण ही नही माने जा सकते।

क्षुद्रा म ही इन सम्बन्धो का होना डा० कृष्णदव उपाध्याय मानत हैं, किन्तु दवर-भाभी क इन अवध-सम्बन्धो के गीत सभी वर्गों वर्णों में गाये जाते हैं। फिर एक माननीय प्रकृति को जाति, वग व वर्ण विशष तक तो हम सीमित कर नही सकते। हा, इतना अवश्य है कि इस कटु सत्य को हम गल उतार नही पाते है। सम्पर्क दोष बहुत प्रबल माना जाता है। देवर-भाभी के सम्पक में आने के कारण उनकी घनिष्टता, जिसको कि समाज प्रदत्त हँसी मजाक की छूट है, क्या आश्चर्य है, यदि अवैध-सम्बन्धो में परिवर्तित हो जाए। सौन्दय सभी को प्रिय होता है। युवावस्था व्यक्ति के सौन्दर्य में यो भी चार-चाद लगा देती है। ऐसी परिस्थितियो मे भाभी अपन सौन्दय युक्त बाके देवर को अपना सतीत्व समर्पित कर देती है, तो इसम आश्चय क्या! जहा इसके पीछे शारीरिक सौन्दर्य एक कारण है वहीं सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक कारण भी काम करते हैं। फिर, कभी-कभी पति क अभाव म भाभी दवर से ये सम्बन्ध स्थापित करती है। इस विवेचन के पश्चात हम इसी निणय पर पहुचते हैं कि ये सम्बन्ध स्वाभाविक अधिक हैं। लोक-गीत सत्य को झुठलाने का प्रयत्न कम करते है। इनमें मात्र आतिशयोक्ति हो यह बात तो है नहीं। न्यूनाधिक मात्रा में यह सम्बन्ध समाज म छिपे तौर पर व्याप्त हैं। लोक गीतो मे इन अवैध सम्बन्धो क उल्लख अधिक है और पवित्र सम्ब धो की अपेक्षा कम। □

---

१ मालवी लोक गीत पृ० ३२१

राजस्थानी लोक-गीतों में हास्य-विनोद

लोक गीतो मे जन-जीवन के हर्ष एवम् विषाद का चित्रण उपलब्ध है। हर्ष मे हास्य एव विनोद होता है। लोक-गीतो मे हास्य-विनोद के विभिन्न सुन्दर चित्र मिलते हैं। राजस्थानी लोक-गीत इसके अपवाद नही हैं। राजस्थानी लोक-गीतो मे जहा जौहर की प्रेरणा है, सावण की पहली तीज के स्नेह की दुहाई और प्रवासी प्रियतम का आमत्रण है, भैया के सम्मुख बहन का ससुराल के दुःख रुदन हैं, काले काग उडाते हुए बाह थक जाने का वर्णन है, वही यथा अवसर हास्य-विनोद के भाव पूर्ण चित्र भी हैं। इनके सहज हास्य-विनोद के एक-एक चित्र के सम्मुख हमारे शिष्ट साहित्य के हास्य-विनोद के लाखो चित्र फीके एवं तुच्छ लगते हैं। उनसे कृत्रिमता की बू आती है। इनमे हृदय प्रसूत स्वाभाविक चित्र हैं। ये शिष्ट साहित्यिक चित्रो की भाति सायास नही हैं।

"गणगौर" के अवसर पर कुमारी कन्याए गौरी माता से इच्छित वर की कामना करती हैं। यह कामना गीतो मे प्रकट की जाती है। निम्नाकित पक्तियो मे ऐसे ही एक वर की कामना का उल्लेख है जिससे वे बचना चाहती है। यह कामना अपने आप म हास्यपूर्ण है —

'चूल्हा केरो चादणो हाडी को हमीर
नो थाला पीवे राबडी, सोला रोटी खाय
ओ वर टाली ऐ गौरी माता मैं पूजण आय।"[1]

जो वर सोलह रोटी खाता हो, केवल चूल्हे का प्रकाश (काला) हो। वैसे वर से उसे बचाना। हाडी के हमीर से जहा ये कन्याए बचना चाहती हैं, वहा यह भी स्पष्ट है कि यह वर महाशय का यह चित्र काफी विनोद पूर्ण भी है। कितना सहज एवम् स्वाभाविक विनोद है यह।

इसी गीत मे आगे बालिकाए भुवा तथा फूफा से भी विनोद करती हैं, यथा—

१. राजस्थानी लाक गीत, डा० रामसिंह आदि पृष्ठ ४५

'हाडो धोवण फूफो मागा झाडू देवण भुवा ।'[1]

यहा फूफा ऐसा मागा गया है जो बरतन (हाडा) धान वाला हो और भुवा झाडू लगाने वाली ।

ऐसा ही भाव एवं भोजपुरी लोक गीत मे मिलता है--

सूप अइसन दहियाए लागा, बाघ अस आँखी ।
उहे तपेसिया ए आभा हमे बलभाइ, मगिया पीसत ए
आभा जायरा अकुलाई ।[2]

राजस्थान की अपनी कुछ परम्पराए और कुछ अपने त्योहार है । कन्याओं का एक त्योहार है घुडला । इस त्योहार पर एक गीत गाया जाता है जिसमे भाभी का विनोद पूर्ण चित्र खींचा गया है । ननद भावज' की ईर्ष्या जहाँ जगत प्रसिद्ध है वही इनके पारस्परिक विनोद भी प्रसिद्ध है । ऐसा ही एक चित्र यहा देखा जा सकता है--

'बीरा सासरे मत जाईयो सासु है धुत्यारी जी
धुत्यारी तो धूत सासी मैं लाडा लेकर आसी जी
बडा घरा री बटी आई माथे चूल्हो लाई जी
काँचली म कोथली वा चणा चबाती आई जी
घाघरे खोल मडासो मारयो मा सू लडबा आई जी ।'[3]

बहन ने भैया स कहा कि भैया समुराल मत जाना क्योकि तुम्हारी सास बडी धूर्त है । इस पर भैया के उत्तर ने बहन को निरुत्तर कर दिया-- यदि सास धूर्त है तो मुझे क्या मैं तो लाडी (वधू) को लेकर ही लौटूंगा ।' जब भाई पर कोई वश नही चला तो वह भाभी का ही विनोद पूर्ण चित्र खीचने लगी--बड घर की बटी कहलाने वाली वह आ रही है । उसने अपने 'घाघरे' (लहगा) को कमर पर कस लिया है और सिर पर चूल्हा लिए चने चबाती हुई आ रही है । यहा भाभी सिर पर चूल्हा लिये कमर कस और चने चबाती लडने को चली आ रही है कितना विनोदमय चित्र है । सहज एव स्वाभाविक ढग से भाभी के प्रति परिहास किया गया है । इतना

---

१ राजस्थानी लोक गीत-- डा० रामसिंह आदि पृष्ठ ४५
२ भोजपुरी लोक गीतो के विविध रूप--श्रीधर मिश्र
३ राजस्थान के त्योहार गीत--लेखक का अप्रकाशित पुस्तक न त स ४

करारा विनोद करने के पीछे चाहे ननद की ईर्ष्या भावना ही क्यो नही रही हो किंतु कहन का ढग सहज है। भाभी बडे घर की बेटी है परन्तु आती है चने चबाती हुई और सिर पर चूल्हा लिए। व्यजित है कि वह तुरन्त अलग घर बसायगी। कहन के उस सहज ढग को देखकर निम्नाकित पक्तिया अनायास ही याद आ जाती हैं—

'इस सादगी पर कौन न मर जाए या खुदा
कत्ल करते है मगर हाथ मे तलवार भी नही।"

भाभी अपनी मर्यादा की सीमा मे रहते हुए भी ननद स विनोद करता है। एक बार ननद भाभी से रूठ जाती है और भाभी को अपने सम्मुख मोर बनकर नाचन की सजा देती है। भाभी को परम्परानुसार ननद की आज्ञा का पालन करना होता है। भाभी को इस आज्ञा का पालन करना ही होता है। किन्तु उसन ननद की इस आज्ञा से विनोद द्वारा छुटकारा पाया है। यथा --

'मोरियो नाच घडी दो घडी,
नणदोई जी नाचे सारी रात।"[1]

भाभी को भा अवसर हाथ लगा, कहने लगा मैं आपकी आज्ञा पालन हेतु नाच तो लूगी। मैं तो मोर के रूप म घडी दो घडी भर नाचूगी, किन्तु आपकी आज्ञा मे तो बचारे ननदोई जी (ननद के पति) सारी रात ही नाचते रहते हैं। बस भाभी का यह उत्तर सुनकर ननद पानी पानी हो गई।

विवाह के अवसर पर भी विनोद पूण गीत गाने की परम्परा है। समधिया को समधिन गालिया देती हैं। बरात म आने वाले समधियो क साथ विभिन्न प्रकार क विनोद किय जाते हैं। निम्नाकित गीत की एक पक्ति दखी जा सकती है--

सात सोपारियों ओलाला हिजाडारो बटको,
टाटिया मूडिया जान्या आया धड मावे पटको।'[2]

बरातियो क प्रति विनोद करते हुए गीतहारने कहती हैं कि गज सिर मिर मुडाय हुए बराती आय हैं। इन्हे कुए म पटक देना चाहिए। बरात

---

१ राजस्थानी के लोक गीत डा० रामसिंह पृ० ५६
२ लखक के सग्रह म

जिस समय भोजन करती है उस समय उन्हें गीतों के माध्यम से विनोद में पटु आदि की उपाधियाँ दी जाती हैं। ये चित्र स्वाभाविक एवं सहज हैं। यथा-

'हां तरा हालरा काई खाय रिया हो रे डाकिया
माकी तो मनवार कीदी वेती र
मोती गज की लेकर जावेनीक जम्बूरा वी लकर जावनी[1]

कितना उत्तम परिहास है यह। इसे विनोद के रूप में ही लिया जाता है।

एक बालक गीत में किसी काकाजी का हास्यास्पद रूप हमारे सम्मुख यों रखा गया है--

'म्हारा काकाजी का टोडो, जैसे मेंढक की मोडो,
मेरे काकाजी के कान जैसे बम्बाई के जान।
मेरे काकाजी की मूंछ जस छिपकली का पूछ।

एक गणगौर गीत में पार्वती महादेव को जोगीड़ा कहकर हंसी उड़ाती है—

छप्पर वालो महादेव जी जोगीडो,
गोरा जोगीडो जोगीडो ना रहीये
सदा शिव कह बतलाया।'[2]

एक अन्य गीत में मेंहदी वाले हाथों के स्थान पर जूते दिखाने की बात कही गई है--

म्हारा बाई जी माडया दोनू हाथ महदी हदराची "[3]
एक अन्य गीत में ननदोई से सहेलज का विनोद देखिये।[4]

ननदोई के साथ साली सहेलजो द्वारा हँसी विनोद करने की परम्परा समाज में प्रचलित है। ऊपरी दो उद्धरणों से इस का स्पष्ट संकेत है। जीवन की विषम परिस्थितियों में इस प्रकार के कुछ अवसर आते हैं जब व्यक्ति इन सारी विषमताओं को कुछ क्षणों के लिए भूलकर आनन्द मग्न हो जाता

१ लखक के सग्रह में
२ मरु भारती वर्ष १२ अंक ३ पृ० १७
३ वही पृष्ठ २२
४ वही पृष्ठ २२

है। यदि ये गीत न होते, यदि ऐसे अवसरों की समाज में परम्परा नहीं होती तो, विषमताओं से पूर्ण हमारा यह जीवन कितना नीरस होता ? इसमें कितनी एकरसता होती ? मानव इन क्षणों के अभाव में कितना उदास हो जाता ? ये हास्यमय गीत लोक-जीवन में नई स्फूर्ति भर देते हैं। ये व्यक्ति को नवीन उत्साह से आगे बढ़ने को प्रेरित करते हैं। लोक जीवन में इनका महत्व है।

□

राजस्थानी लोक-गीतों में प्रतीक योजना

अभिजात साहित्यकार से लोकगायक अधिक स्वच्छंद रहा है। तभी लोकगायक की अभिव्यक्ति में प्रगल्भता अधिक रही है। अश्लील-गीतों में भावनाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति इसी का पोषक है। समाज के नियमों एवं निषेधों के कारण उन्हें प्रतीकों का आयोजन करने पड़े हैं। सभी प्रतीक उसके अपने परिवेश से चुने गये हैं। उन्हें समझने के लिए मुख्य एवं आवश्यक बात यह है कि इन्हें लोक-जीवन के परिवेश के संदर्भ में ही देखा जाये। यदि हमें उस परिवेश का उचित ज्ञान नहीं होगा तो हम उनका निश्चित अर्थ शायद ही समझ सकें।

मानव अपने भावों की अभिव्यक्ति स्वच्छंद रूप से सर्वत्र नहीं कर सकता। वह समाज के नियमों एवं बंधनों की सीमाओं से आबद्ध है। उसकी यह विवशता उसे अपने भावों को अवगुण्ठन में आवेष्ठित करके ही अभिव्यक्त करने के लिए बाध्य कर देती है। विशेषतः यौन-संबंधों एवं यौन-अंगों संबंधी भावों के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दों का उल्लेख स्वछंद रूप से नहीं किया जा सकता। अतः वैसे ही स्थलों पर अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक हो जाती है।

अपरिपक्व-फल लोक-गीतों में जहां नायिका के यौवनागम की पूर्व स्थिति का प्रतीक बनकर आया है वहीं कच्चा-पक्का-फल मुग्धावस्था का। एक मालवी दोहे में अपरिपक्व-फल के प्रतीक द्वारा यौवनागम की पूर्व स्थिति का संकेत यहां द्रष्टव्य है--

'कच्ची केरी कच्च-पच्ची, पाकन दे दिन चार।
काची के मत तोडजो, म्हारो जोबन अकारथ जाय।'[1]

नायिका अपने प्रेमी से यौवनागम-पूर्व उसका उपभोग करने का निषेध करती है। कारण केरी कच्ची है इसे चार-दिन पकने दो। कच्ची को मत तोड़ना, अन्यथा मेरा यौवन व्यर्थ हो जायेगा।

---

१ मालवी लोक गीत एक विवेचनात्मक अध्ययन — डा० चिंतामणि उपाध्याय, पृष्ठ २८६

एक साखी मे 'कच्चे-पक्के बेर' मुग्धावस्था के प्रतीक बन गये हैं। नायिका नायक से अनुरोध करती है कि कल गणगौर का त्योहार है, अतः तुम कच्चे-पक्के बेर ही तोडलो। 'कच्चे पक्के बेर' यहा नायिका की मुग्धावस्था का सकेत दे रहे हैं।

'डुगर ऊपरै डुगरी, जिस पर ऊची बडबोर।
काचा-पाका तोडले, तड़के है गणगौर ।। (सकलित)

कच्ची निबौरी भी अपरिपक्व यौवन के प्रतीक के रूप मे एक लोक-गीत मे प्रयुक्त है-

'फागण रो रुत आई, आई सखि होली ए !
छाड मती बालम काची नीम नीम्बोली रे !' (संकलित)

यहा रगीन बसन्त ऋतु के आगमन का सकेत है। ऐसी ऋतु मे प्रेमियो के हृदय मे काम का जागृत होना स्वाभाविक है। अतः, प्रियतम प्रेयसी को छेड़ता है। वह कच्ची 'नीम्बोली' का नही छेड़न का अनुरोध करती है।

लोक-गीतो मे परिपक्व-फल परिपक्व-यौवन का प्रतीक बनकर आया है। ऋतुओ क साथ नायिका के हृदय की स्थिति का अकन भी किया जाता रहा है। एक हाडौती लाकगीत म पावस ऋतु के अनुरूप एक वियोगिनी का स्थिति का वर्णन उदाहृत किया जाता है—

"जठ जवानी छा रहीस जी, अब बदनामी आसी जी,
पकर्या दाड़यू दाख, टपक रस झरताई आसी जी
असाढ़ मास बरखा रुत आई, बादल चढ आसी जी
गरड बीजली यो घोर गरड़, जीव डाई जासी जी।"[1]

इन पक्तियो म नायिका करती है कि जेठ मास आ गया है, जवानी छा रही है, अब बदनामी भी आयगी ही। सभवतः वह अपनी उठती जवानी को सभालने मे असमर्थ रहेगी और इससे बदनामी आ जाएगी। दाड़िम और दाख पक रहे है। इनमे से रस टपकेगा। आषाढ़ मास से वर्षा ऋतु आरभ होगी। उस समय नायिका की स्थिति विचित्र हो जाएगी। बादल चढ आयेंगे, गभीर गजन करेंगे और विद्युत भी चमकेगा। वैसी स्थिति मे प्राण कैसे

---

१ हाडौती गीतो म प्रकृति चित्रण—डा० कन्हैयालाल शर्मा, मधुमती, अक्टूबर १९६५

बचग। यहा 'जीव' जाने का अर्थ है, हृदय हाथ से निकल जायेगा। दाडिम और दाख का पकना भर यौवन का प्रतीक है। बादल की गरज एव बिजली की चमक का नायिका के हृदय म उठने वाली काम-भावना का प्रतीक भी माना जा सकता है। यहा एक अन्य उदाहरण विचारणीय है। यथा—

ढाला कबर जी आम्बा तो पाक्यो रे आमलो !
आम्बा चूख लो लगो आवज !
निंतर गुठल्या चुणला रे गिंवार। (सकलित)

यहाँ वियोगिनी नायिका यौवन की परिपक्वावस्था का सकेत नायक को आम एव इमला क पकन की बात स कर रही है। साथ ही यह भी कहती है कि यदि चूसना हो ता शाघ्र आ जाओ ! अन्यथा ह गवार ! तुम्हें बाद म ता गुठली ही चुनना पडगी।

डा० चिन्तामणि उपाध्याय न लिखा है--योनि क लिए पाचकरण की बावडी' एव चार खुण्या की बावडी आदि प्रतीको का प्रयोग मिलता है। बावडी क स्थिर एव शान्त जल का झकोर दकर सिहरन एव हिलोर उत्पन्न करन की क्रिया म रति क्रीड़ा का सकेत है। योनि क लिए रतन-कुआ शब्द का प्रयोग किया गया है।[1] राजस्थानी लोकगीतो म भी उन्ही प्रतीको क प्रयोग हुए ह। यथा,

क चार खुण्यां की बावडी, भरी थवाना साय।
हाथी पाडा डूब ग्या, पणिहारियाँ रीती जाय ।। (सकलित)

ख चार खुण्यां की बावडी, नीक पगत्या पगत्यां नील।
डावडी हाल-हाल उतरज्य, थारा जापा वाला ढील ।।
(सकलित)

ग चार खूट की बावडी जी म शीतल नीर।
आपा रलमिल न्हायस्या म्हारी लाल नणद का बीर।
आ उमराव यें हुक्म करो धण हाजर।[2]

इसी गीत म आग चांदी का वाटको' (कटोरा) योनि का प्रतीक बनकर आया है और दान्यू जामा साथ' रति क्रीड़ा के प्रतीक क रूप म

१ मालवी लाक गीता का विवेचनात्मक अध्ययन–पृ० ३२२-३२३
२ राजस्थानी लाक गीत—स० डा० रामप्रसाद दाधीच पृ० १३५-१३६

चादी को बाटको जी जीमे बूरा भात ।
हुक्म होय सरकार को दोत्यू जामा साथ ।[1]

यहाँ चार 'खुणो' (कोनो) की बावडी योनि का प्रतीक है। नायिका म कहा जा रहा है कि वापी की प्रत्येक-सीढ़ी पर काई है, अत धीरे-धीरे उतरना क्योंकि तुम्हारा जापे का डील (प्रसव के बाद का शरीर) है। द्वितीय उद्धरण म प्रसव क बाद सभोग-क्रिया धीरे धीरे करने का सकेत किया गया है। ऐसा ही उल्लेख एक अन्य गीत म भी है—नायिका अभी प्रसूता ही है। कामुक पति उमल प्रणय प्रस्ताव करता है। वह कहता है कि हे प्रिय ! तुम बाड़ा झलो। बीडा झलना प्रतीक है रति क्रीडा के प्रस्ताव का। प्रयसी उत्तर देती है कि मैं आपका यह प्रस्ताव जलवा पूजनोपरान्त ही स्वीकार करूंगी। यथा—

यो ता उम्या पन्ना मरू राज सायब यु केवै,
म्हारी प्यारी धण बिडलो झल • ले' दयो धण ने ••
थारो तो बिडलो ओ राज पन्ना मारू मैं झलस्या
कोई जलवा की रात•••ले' दयो धण ने मिरच मालचिया ।[2]

प्रसूता पति क एक महीन बाद ही जलवा पूजकर शयन करती है। इस बीच पति पत्नी का मिलन स्वास्थ्य दृष्टिकोण स हानिकारक माना जाता है।

तृतीय उद्धरण म 'रल मिल न्हायस्या' सभोग क्रिया का प्रतीक है।

एक हालो गीत म 'रतन कुवो मुख साकडो' योनि के प्रतीक के रूप म प्रयुक्त हुआ है। रत्न कुंआ प्रतीक साभिप्राय है। यथा—

फागण आयो फागणिया रगाद रसिया, फागण आयो !
रतन कुवो मुख - साकड़ा जो रसिया, गुलाबी लागै नेग जी रसिया !

—सकलित

राजस्थान के प्रसिद्ध गीत जला' म 'आमलिया पाकी ने अब रुत आई'—' यौवन क परिपक्व होन का प्रतीक है। साथ ही इसी गीत म आग कुवाडिया रा ठडा इमरत पाणी' योनि का प्रतीक बन कर आया है —

१ राजस्थानी लोक गीत — स० रामप्रसाद दाधाच पृ० १२३
२ मरु भारती—(वष ३ अक ।) पृ० ६०

जला रे आमलियां पाकी न अब घर आई र !
म्हारी जोड़ी रा जला मिरगां नणी रा जला !

X X X

कुवडिया रो ठडो इमरत पाणी रे जला !
जला रे ठडो पाणी साहिब जी ने पाइज रे ![1]

एक होली गीत म नायिका अपन मामा स नीम्बोली' खिलाने को कहती है। नीम्बोली खिलाना रति-क्रिया का प्रतीक बनकर ही आया है। नायिका कहती है कि नीम्बोली खिलाओ तो मैं तुम्हारे साथ गोल नीम तक चलू। यदि तुम नीम्बोली डालोतो मै चारो पल्ले मांडलू (आचल पसार लू)। यहां चारो पल्ले योनि का प्रतीक है। नीम्बोली' प्रतीक साभिप्राय चुना गया है। यथा—

नीम्बोली खुवाढ मामा गोल नीम्बड हालू रे !
परदेशी मामा नीम्बोली खुवा द रे !
नीम्बोली नाके तो मामा थारा पल्ला माडू रे !
परदेशी मामा नीम्बोली खुवा दे रे ! (सकलित)

एक गीत काच कघा मगवाना' और जल से भरा घडा क्रमश प्रणय प्रस्ताव और सुहाग का प्रतीक ह ।[2] इसी प्रकार साहनी रग को चूडियां एक भोजपुरी गीत म सुहाग की और बांह पकडना प्रणय प्रस्ताव का प्रतीक है।[3]

---

१ राजस्थानी लोकगीत—स डा० राम प्रसाद दाधीच, पृ० १३५-१३६

२ नुबोडा कुआ का ढोल्या ऊपरं भाभी !
काच कांघस्यो पडियो ए लेती आज्ये ए !
म्हारे माथे जलरी झारी ओ दवर क्यान लूलूला ओ ?
म्हाने डर परणियां रोलाग ओ दवर ? (संकलित)

३ माटी खाने गइलो रे ओही माटी खनवा !
दवरवा पापी घइले मोरी बहिया ।
छोड छाड दवरवा पापी हमरी कलइयां ।
से फूटी जइहैं सेहैनी रग की चूरिया ।
—भोजपुरी लोक गीतो के विविध रूप—पृ० १०

एक लोक गीत मे भाभी, देवर मे शीतला के मेले मे और पुष्कर जी के मेले मे (क्रमशः) धूप मे जलने के कारण छतरी तानने को तथा प्यासी होने के कारण नल खोलने की बात कहती है।[1] धूप मे जलना और प्यास से मरना वासना से पीड़ित होने के प्रतीक हैं। साथ ही छतरी तानना एव नल खोलकर प्यास बुझाना वासना शांत करने के प्रतीक हैं।

एक गीत मे भाभी, देवर से अनुरोध करती है कि मैं पाणत करने (पानी देने के लिए) खेत मे खड़ी हू। तुम कुआ धीरे चलाओ। आगे कहती है कि मैं बाजरे के खेत मे पाणत कर रही थी कि पाव में कांटा चुभ गया। हे देवर ! तेरी बाड का गन्ना मुझे बहुत मीठा लगता है।[2] यहा देवर का कुवा चलाना रति क्रीड़ा का और गन्ना देवर के यौन-अंग का प्रतीक है।

एक गुजराती गीत मे देवर, भाभी को सुपारी इलाईची तथा हरे लौंग दिखाने के लिए बाध्य कर रहा है।[3] ये वस्तुए भाभी के स्तन आदि अंगों की प्रतीक हैं।

एक गीत मे कहा गया है कि हे प्रियतम ! तुमने पीपल का वृक्ष तो लगाया, पर जब इस की छाया में बैठने का समय आया तो तुम विदेश जा रहे हो।[4] यहां पीपल का घेर-घूमेर (छाया देने के योग्य) होना प्रतीक

१. शीतला को मेलो काई रोज रा मरे !
छतरी ताण रे देवरिया भाभी तावडे बले !
पोकर जी रो मेलो काई रोज रो भरे !
टूटी खोल रे देवरिया भाभी तसायां मरे ! —सकलित

२. चार-चार बलदा की जोडी ढाणा माये उबी।
धीरे हाक रे देवरिया भाभी पाणत मे उबी।
बाजरा रा खेत मे पाणत करता भागो रे कांटो।
मीठो लागे रे देवरिया थारी बाड़ रो सांठो। -सकलित

३ देखाड नारी सोपारी, एलचड़ी, देखाड लीले रा लवींगड़ा रे !
—रढियाली रात (भाग ४) पृ० ४७

४. बाय चाल्या छा भवर जी ! पीपली जी
हा जी ढोला ! हो गई घेर घूमेर !
बैठा री रुत चाल्या चाकरी जी !
ओजी म्हारी सासू सपूती रा पूत।
—राजस्थानी लोक गीत डा० दधीच, पृ० ११६

है यौवन के पूर्ण विकास का और उस के नीचे बैठने से तात्पर्य है यौवन के उपभोग से। इसी गीत में आगे कहा गया है कि प्रियतम तुमने श्रावण-मास में कृषि कार्य किया। भाद्रपद में उसमें निराई भी की। परन्तु उसके फल देने की ऋतु आई तो विदेश चल दिए। यहां 'सीटा री रुत' यौवन के उपयोग का समय की प्रतीक बनकर आई है।[1]

एक गीत में मोर का बाड़ी चुगना प्रतीक है पति के द्वारा यौवन को पर-स्त्री के साथ नष्ट करने का।[2]

ऊपरी विवेचन में मूलत का काम-प्रतीक ही विश्लेषित हुए हैं। अब एक अन्य प्रतीक भी विचारणीय है।

बेटी की घर से विदाई के समय गाए जाने वाले एक गीत में बेटी को कोयल[3] कहा गया है। यहां भी लोक-गायक ने प्रतीकात्मक शैली ही अपनाई है। प्रसिद्ध है कि कोयल अपने अण्डों को स्वयं नहीं सेती है। और कौए द्वारा सवित अण्डों से विकसित कोयल के बच्चे पंख निकलते ही वहां से उड जाते हैं।

पुत्री को कोयल कहने में के मूल में लोक गायक की यही मान्यता रही है। पुत्री का का पालन-पोषण माता-पिता करते हैं। पर जैसे ही वह

---

१ सावण खेती थें करी जी, भंवर जी !
हाजी ढोला ! भादुडे करयो जी निनाण !
सीटा री रुत छाया परदेश में जी,
ओजी म्हारा घणा कमाऊ उमराव !
—राजस्थानी लोक गीतों —डॉ० दाधीच पृ० ११६

२ तीस रुप्या रो साल्डो पडियो पैयो के माय !
माम् कवे बहू पैरे क्यू नी ए ?
ए मोरियो बाड़ी चुग रह्या,
थारा परणियो पर घर जाय !
—सकलित

३ हे मैं थान पूछा म्हारी धी बडी, हे मैं थास पूछा
उतरो बाबो सा रोलाड छोडने, कोयल म्हारी सिद चाली !
हे ओ तो आयो सगा रो सुवटो, हे ओ तो आयो बागां को सुवटो
ओ तो लग्यो टोली मास्यूं टाल, गायडमल ने चाल्यो ! (सकलित)

बढ़ी होती है विवाहोपरांत ससुराल चली जाती है। कोयल की उपमा लोक-गीतों में अन्यत्र भी दी जाती है।[1]

ऊपर लोक गीतों मे प्रयुक्त कतिपय प्रतीका के अथ स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। इन प्रतीको के सामान्य अभिप्राय तक ही हम पहुच सके हैं। राम अवध द्विवेदी ने 'काव्य म प्रतीक विधान' नामक लेख मे कहा है— यह सम्भव नही कि हम प्रतीको का समीकरण करके निश्चित रूप से कह द कि उनका क्रमश क्या अथ है। इस प्रकार का प्रयास निरथक ही नहीं वरन् हास्यास्पद भी होगा।[2] आपने प्रतीक की परिभाषा करते हुए कहा है— प्रतीक किसी पदाथ का चित्र नही खीचता, केवल सकेत द्वारा उसकी विशिष्टता अथवा उसके प्रभाव इगित करता है। उसका अपना पृथक अस्तित्व है जो किसी किसी अन्य वस्तु अथवा तथ्य पर अवलम्बित नही रहता। उसकी अपनी निजी व्यवस्था म अनेक प्रभावो, प्रयोजनो तथा अर्थों का सूक्ष्म सम्मिश्रण विद्यमान रहता है।[3] अस्तु यह स्वीकार करना पडगा कि लोक गीतो मे प्रयुक्त प्रतीको के समीकरण द्वारा हम सर्वथा सही अथ निर्धारित करने की स्थिति मे नही हैं। अस्तु ऊपरी स्पष्टीकरण मात्र सभाव्य अथ की ओर ही सकेत करता है यही मानना अधिक सगत है।

---

१ । मेरी ए बाग दी ए कोयले
बागे छड्डी कस्यू चल्लो ए।
—प्राच्य भारती म प्रकाशित लेख कुमाऊँ के गीत स

॥ थारी आल दिवाल गुडिया धरी,
वन खण्ड की ए कोयल बन खण्ड छोड कठ चाली
—मालवी लोक गीतो का विवेचनात्मक अध्ययन
—डा० चि तामणि उपाध्याय पृ० १५६

॥। थीयड म्हारा बागाँ की कोयलिया काल दिन उड जासी ॥
चाँद बैठी चिडकली जी फुरक्ता उड जाय ॥
—हाडौती लोक-गीत - डा० च द्र शखर भट्ट पृ० १११

२ आलोचना — जुलाई १९५७ पृ० २७

३ वही पृ० ६२

लोक गीतो मे क्रांति के स्वर

लोक गीतो म हम लोक जीवन का यथा तथ्य अकन मिलता है। समाज की तत्कालीन परिस्थिति का स्पष्ट शब्दो म यदि कही वास्तविक वणन देखना हो तो हम लोक गीतो का अध्ययन करना चाहिए। राजनैतिक स्थितियो का वास्तविक वणन करन म साहित्यकार प्राय अवश होता है, पर लोक-गायक प्रगल्भ। वह कभी बाह्य प्रभाव म आकर अपने धम को नहीं भूलता। समय समय पर उसने जिन तत्कालीन स्थितियों को गय बनाया है वे आज भी हमे सही दिशा का ज्ञान कराने म सहायक हैं।

अग्रजो न अनायास भारत को द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका म झोक दिया। साहित्यकार उस समय मौन होकर उन परिस्थितियो का द्रष्टा मात्र रहा, कि तु लोक काव्यकार की आत्मा प्रगल्भ हो उठी। उससे यह सहन नही हो सका कि देश की जनता अकाल के कारण भुखमरी का शिकार बन और शासक अपन हित के लिए जनता का बलिदान करे। सभी लोककण्ठ स आक्रोश का स्वर फूटा था जिसकी प्रथम दो पक्तिया निम्नाकित हैं—

> अगरेज मत कर कागद कालारे !
>
> राज करेला जरमन वाला रे !

कहते हैं गीत बहुत लम्बा था कि तु आज इसकी ये दो पक्तियां ही प्रचलित हैं। उन दिनो इसे गान वाली स्त्रिया को अग्रज आफिसर न पकड मगवाया था। दण्ड स्वरूप उनके सिर मुडवा दिए गए थे। साथ ही उन्हे इस गीत को भविष्य म कभी नही गान का आदेश भी दिया गया था। कि तु क्या लोकमानस इस या इससे भी भयङ्कर सजा पाकर चुप हो सका।

लोक-गीतो में देश की स्वतत्रता के लिए बलिदान होन वाले वीरो से सम्बधित अनक गीत उपलब्ध हैं। उनम उनके कृत्यो का ससम्मान स्मरण किया गया है। इन गीतों म देश भक्ति का अजस्र स्रोत प्रवाहित है। उन्हे सुनकर आज भी हमारी शिराओ म रक्त की गति दोगुनी हो जाती है।

वीरप्रसू राजस्थान में ऐसे वीरों का अभाव नहीं जो मातृ-भूमि की मर्यादा की रक्षा के लिए जूझ कर मर मिटे। डूंगजी-जवार जी, सूरजमल चौहान (मूजा), राजू रावत, आउवा ठाकुर कुशाल सिंह जी, भरतपुर महाराजा, उमर कोट का रतन राणा आदि इसी श्रृंखला के रत्न हैं (जिन पर यहा अलग से भी विचार किया जा रहा है)। इन वीरों का इतिहास में अभी उचित मूल्यांकन होना बाकी है। इनका वास्तविक मूल्यांकन लोक गायक ने अवश्य किया है। लोक-मानस ने गीतों के माध्यम से इन वीरों के कार्यों को सही रूप मे प्रचारित-प्रसारित अवश्य किया है।

अन्याय एव अत्याचार के विरुद्ध जूझ मरने वाले जुझारु केवल राजस्थान मे ही नहीं हुए हैं, अपितु भारत के प्रत्येक कोने मे इस प्रकार के नर सिंहो का जन्म हुआ है। बिहार के कुवरसिंह, अवध के राणा बेणी माधव सिंह, नरसिंह गढ (मालवा) के राजपूत चैन सिंह आदि ज्ञात-अज्ञात अनेक एसे ही वीर हुए हैं। ऐसे वीरों के प्रति लोक-गायक श्रद्धा पूवक नतमस्तक होता है; इनका अभिनन्दन करता है। झासी की रानी लक्ष्मी बाई के सम्मान में बुन्देलखण्ड में लोक गीतो का प्रचलन तो है ही, सुभद्रा कुमारी चौहान ने भी कहा है--

बुन्देले हर बोलो के मुह, हमने सुनी कहानी थी।
खूब लडी मरदानी, वह तो झासी वाली रानी थी।

देश की मर्यादा के रक्षार्थ प्राणो का उत्सर्ग करने वाले वीरों का इतिहास जानना हो तो हमे अज्ञात और अलिखित लोक-गीतो लोक-गाथाओं एव लोककथाओ का अध्ययन करना होगा।

शंकरपुर अवध के राणा बेणी माधव सिंह ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए वीरतापूर्वक अग्रजो से युद्ध किया। उन्होंने प्राण रहते अग्रजो की आधीनता स्वीकार नहीं की। राणा ने जब अग्रजों की नाक मे दम कर दिया तो उन्होंने राणा को चिट्ठी लिखकर बुलाया। राणा ने उत्तर मे लिख भेजा कि यह चाल मेरे साथ मत चलो। प्राण रहते हम तुम्हे खोद फेंकेंगे। इस

प्रसंग की चर्चा एक लोक गीत में की गई है।[1] ऐसे वीरों की ही स्मृति में जन मानस ने लोक गीतों में अपने भाव-सुमन समर्पित किये हैं।

बिहार में कुंवर सिंह १८५७ की क्रांति के सेनानी हुए। उन्होंने स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगा दी। उनका अंग्रेजों के साथ आरा का युद्ध बहुत प्रसिद्ध है। भोजपुरी लोक गीतों में उस वीर के कृत्यों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गई है। वैसे वीरों की होली रक्त-रंजित तो होगी ही। लोक गायक ने कुंवर सिंह द्वारा लड़ गये युद्ध का रूपक होली पर खेले जाने वाले रंग से बांधा है।[2]

राजस्थान के टाटगढ़ (मगरे) निवासी वीर राजू रावत ने अंग्रेजों को भूमि-कर देने से जनता को मना कर दिया। उसे अंग्रेजों ने टाटगढ़ का जेल में बंद कर दिया पर वह दैवी कृपा से जेल तोड़ कर निकल गया। जेल से निकल कर उसने अंग्रेज के बंगले पर जाकर सोलह अंग्रेजों और चार चपरासियों को भी मारा तदुपरान्त वह कोट से कूद कर भाग निकला और अंग्रेजों के विरुद्ध उसने क्रांति का बिगुल बजा दिया।[3] उसके इस कृत्य को लोक गायक ने गीत का रूप देकर अमर कर दिया है। बाद में वीर पुनः बंदी बना लिया गया। ब्यावर में उसे जिस समय फांसी लगाई

---

१ राना बहादुर सिपाही अवध में धूम मचाई मारे राम रे।
लिख लिख चिठिया लाटन भेजी आन मिलो राना भाई रे।
जवाब सवाल लिखा राना ने हममें न करो चतुराई रे।
जब तक प्राण रहे तन भीतर तुम कन खोद बहाई रे।।
—लोकायतन डा० चिन्तामणि उपाध्याय पृ० १८९

२ भोजपुर अइस होली मचाई।
गोली बारूद के रंग बनाये तोपन की पिचकारी।
बीच भोजपुर फाग मचल बा खेले कुंवर सिंह भाई।।
—भोजपुरी लोक गीतों के विविध रूप—प्रो० श्रीधर मिश्र पृ० १९०

३ बंगला ऊपर आय राजू चार तो चपरासी मारिया।
सोलह मारिया फिरंगी, नाओ सोलहा मारिया फिरंगी।
फिरंगी मार न राजू कोट कूदियों मांझल रात री।
—राजस्थान के त्योहार गीत (लेखक की अप्रकाशित पुस्तक)
परि० पृ० १२-१३

जा रही थी, उसकी माँ भी वहाँ उपस्थित थी। कर्नल डिक्सन ने उसे बताया कि वायसराय का पत्र आया है कि तुम यदि अंग्रेज बहादुर की अधीनता स्वीकार कर लो तो तुम्हें एक ऊंचा पद दिया जा सकता है। उक्त प्रस्ताव को भर्त्सना राजू करे, उसके पूर्व वहीं खडी उसकी माँ ने उससे कहा कि पुत्र, तुम मेरे दूध को लज्जित मत करना। पराधीनता से मृत्यु श्रेयस्कर है। और राजू ने हंसते-हसते फासी का फन्दा अपने हाथ से ही गले मे डाल लिया।

लोक गायक ने जहा देश के सम्मान के लिए एव स्वतंत्रता के रक्षार्थ मरन वालो को श्रद्धा-पूर्वक स्मरण किया है वही उन कायरो की कटुतम शब्दो मे भर्त्सना भी की है, जिन्होने प्राणो के मोह मे पड कर स्वतत्रता सग्राम मे भाग नहीं लिया। आउवा ठाकुर कुशाल सिंह जी ने जब अग्रजो के विरुद्ध युद्ध का सकल्प लिया तब उन्होंने अपने भाइपे म पत्र प्रेषित कर उनस सहयोग देने की बात कही। उस समय उन्होंने रायपुर (पाली जिला) जोधपुर वालों से सहायता मागी थी। वे युद्ध मे सम्मिलित नही हुए। जोधपुर वालो की सेना तो अग्रेजो की ओर से लडी थी। लोक गायक ने स्पष्ट शब्दो मे उनकी भर्त्सना की है। रायपुर के राजा को तो क्लीव और कच्ची छाती का कहा है।[1] लोकगीतो में एक ओर जहा स्वतंत्रता प्रेमियो के यशोगान गाए गए हैं, वहीं दूसरी ओर देश द्रोहियों की कटु शब्दो में निन्दा भी की गयी है। आउवा के ठाकुर की प्रशस्ति में गाये जाने वाले गीत मे न केवल आउवा ठाकुर की कीर्ति का वर्णन है, बल्कि अंग्रेजो स झगड कर जब आप मेवाड़ के कोठारया ग्राम म गए तो वहा उनका जो भव्य स्वागत हुआ उसका भी वर्णन हुआ है।[2]

अंग्रेजो के प्रति एक गहरा आक्रोश एव घृणा का भाव जन-जीवन में व्याप्त था। उसकी सटीक अभिव्यक्ति लोक गीतों म मिलती है। अग्रजो का ग ी मूल्याकन लोकगायक ने किया है। एक गीत म कहा गया है कि देश म अग्रज क्या वस्तुए लाये हैं? उत्तर है – उसन भाइयो म फूट डाल दी

१ ए रायपुर रा गढ़िया मरण सूँ डरिया रे, काची छाती रा।
राजस्थान के स्वाहार गीत (लेखक की अप्रकाशित पुस्तक)
पारि० पृ० १३

२. ए अगरेजों ऊ आपडने उनरार आया रे।
माराया बजाया, नारे मार्ग बधाया।

और बगार भी साथ लाया है। घोड़ा घास के लिए रो रहा है और बच्चे दानों के लिए। महलों में बैठी माताए अपने पुत्रों के लिए रो रही है। स्वतन्त्रता प्रिय राजस्थानी जनता भला किसी विदेशी के सम्मुख कैसे झुक सकती थी? यही नहीं अंग्रजो के प्रति घृणा की अभिव्यक्ति उनको भूरे मुंह वाला एव काली टोपी वाला कह कर भी की गई है।[1]

केवल राजस्थानी लोक गीतो में ही नहीं भोजपुरी लोक गीतो मे भी ऐसे भावो की अभिव्यक्ति हुई है।[2]

आउवा एव आसोप नरेशो ने अग्रजो के विरुद्ध युद्ध किया। जोधपुर महाराजा उनसे मिलने गए। इस प्रसग का लोक गायक ने सहज कर रखा है। एक गीत मे आसोप एव आउवा को मरुधरा के गले मे मोतियो की माला कहा गया है।[3]

अग्रजो के शासन काल की अव्यवस्था का स्पष्ट शब्दो में अकन (द्रष्टव्य पहला उदाहरण) किया गया है। उन्होने भाई भाई मे फूट डाल दी थी। पशु तृण तृण के लिए तरसते और बालक दान दान के लिए रोते थे। इतने स्पष्ट शब्दो मे शासन के विरुद्ध चित्रण शायद ही मिले। कुछ कवियो ने तो अग्रजो का गुणगान भी किया है। राष्ट्र कवि गुप्त जी तक ने भी जार्ज पचम के भारत आगमन पर एक कविता लिखी थी जिसकी प्रथम पक्ति थी —

'चिरायु हो, चिरायु हो जार्ज पचम हमारे।"
इसी प्रकार बिहारी नामक कवि ने लिखा—
गदर गनीम गुबार उठ्यो सत्तावन मे सिगेर जन जानो।
मेटि प्रजा दु ख वगि सयानी त्यो हो बिहारी लियो कर शासन।

---

१ ए देश म अगरेज आयो काई काई चीजा लायो रे।
फूट नाँकी भा यो म बगार लाया रे, नारे भूरिया मुडालो।
घोडा रोवे घास न टाबरिया रोवे दाणा न।
नारे भूरिया मुडालो काली टोपी रा!
—राजस्थान के त्योहार गीत (लेखक की अप्रकाशित पुस्तक)
परि० पृ० १५

२. योरोप स अइल रामा गोरे अगरेजवा,
दूनो भइयन में झगरा लगा गइल ना,
ऐन-आन का दा कादो बलि बतिया के रामा,
हमारा देसवा के माटी में मिला गइल ना।
—भोजपुरी लोक गीतो के विविध रूप—प्रो० श्रीधर मिश्र, पृ० १५०

३ आऊ न आसोप धणिया मोतिडा री माला ओ।
बार ्हाको कूचिया तुडावो ताला र झगडो आदरियो।
—राजस्थानी लोक गीत—म० राम प्रसाद दाधीच पृ० १६७

कवियो की यह स्थिति थी कि वे अंग्रेजो के शासन की प्रशसा कर रह थे और १८५७ की क्राति को गदर कह रहे थे। ऐसे समय में लोक गायक ने स्पष्ट शब्दो मे अंग्रेज राज्य की भर्त्सना की, उनके राज्य मे प्रचलित अव्यवस्था का चित्रण किया। गदर कहने के स्थान पर उसमे भाग लेने वाले वीरो एव वीरागनाओ की प्रशस्ति मे गीत गाये और उन्हे अमर कर दिया। आज ये गीत इतिहास के अपेक्षित पात्रो के जीवित इतिहास हैं। यह लोक-गायक का ही साहस था जिसने प्रभुता के प्रभाव को ठुकरा कर अंग्रेजों की भर्त्सना की। ये लोक गीत भारतीय जन-जीवन मे युगो-युगों से स्वदेश प्रेम तथा राष्ट्र पर बलिदान होने की भावना भरते आये हैं, प्रेरणा का सचार करते रहे हैं और करते रहेंगे।

आसोप के ठाकुर महेशदास जी कूपावत बडे वीर थे। महादजी सिंधिया ने अजमेर व मेडता पर आक्रमण किया। उसकी सेना का नायक फ्रासीसी जनरल डिबोय था। जोधपुर राज्य के इन दो स्थानो पर जब आक्रमण हुआ तो जोधपुर के महाराजा ने महेशदास जी को पत्र लिखकर सहायता मागी। वे सहायतार्थ गए। मेडता म युद्ध हुआ। वीरवर महेश दास जी खूब चन्द सिंघवी एव भीम राज सिंघवी दोनो जोधपुर के महाराजा के मत्री थे। इनकी कुचालो से मरहठो ने युद्ध जीत लिया। इनके मरने के पश्चात् ही वे सफलता प्राप्त कर सके। इसका वर्णन "मुड़ियो नही महेश" नामक लोक गीत मे हुआ है। उनके लिए गीत म कहा गया है कि दूसरो की तरह वह भागा और देश को कलकित नही किया। तलवार का धनी पृथ्वी पर रणबांकुरा कूपावत, राजा महेश गढो एवम् कोटो का रक्षक था। 'तुम सौ बार धन्य हो। तुम युद्ध मे ऐसे जमकर लडे मानो तुम्हारे पाव पाताल म जमे हो। तुम्हारी भुजाए आकाश को छू रही थी। तुम्हारा तन तलवारो क वार क्षत-विक्षत हो गया। फिर भी तुम मुडे नही"।[1]

---

१. दूजा ज्यूं भागो नहीं दाग न लागा दस
बागा खागा बाकड़ो मढ़ि बाका महेस
कूंपा रावा कांठा गढ़ा रे किंवाड़
ओ धारा रग सौ फूंट नरस
धन अड़िया धरा निरा अडूया नभ असमेन
तन झड़िया ता वारियां, मुड़िया नाही महेस
—राजस्थानी लोक गीत, स० रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत, पृ० १८५

राजस्थान म ऐसे अनेक वीर हुए। भरतपुर क राजा रणजीत सिंह जी ने जसवन्त राव होल्कर को शरण दी थी। अंग्रेजो न उनस होल्कर का लौटाने की बात कही। शरण म आए हुए होल्कर को वे कैसे लौटाते! अंग्रेजो ने उन पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजो का एक बार युद्ध मे पराजित होना पडा। तब अंग्रेजो ने भेद नीति का आश्रय लिया और वे सफल भी हुए। तब भी रणजीत सिंह जी ने होल्कर को अंग्रेजो को नही सौपा और उन्हे सुरक्षित रूप म पजाब रवाना कर दिया। उनकी प्रससा म निम्नाकित गीत गाया जाता है।

> आछो गोरा हट जा राज भरतपुर को रे
> भरतपुर गढ़ बाको किलो रे बाको, गोरा हट जा!
> थू मत जाणी रे लडे रे बटो जाट का
> ओ कुवर लड़ै रे राजा दसरथ को गोरा हटजा।
> गढ रे उभारे म्हारा बावन भेरू
> कागरा उभारे चौसठ जोगणिया, गोरा हट जा!
> चक्कर चलावेला बावन भेरू,
> खप्पर भरेलो म्हारी चौसठ जोगणिया, गोरा हटजा।[1]

रतन राणा उमर कोट के सोढा थ। उन्होन अंग्रेजो के विरुद्ध एक सगठन एव सेना तैयार की। उन्होने अंग्रेजो स निरन्तर युद्ध किया। अन्तत अंग्रेजो ने उनके एक आदमी को अपना बनाकर रतन राणा को पकड लिया और फासी दे दी। उनकी स्मृति मे, एक वियोग गीत प्रचलित है जिसमे उमर कोट अथवा अमराण लौटाने की बात उनसे कही गई है—हे राणा! अमराणे मे आकर घरट मडवा दो। घर-घर मे घडिया (चक्किया) चलवा कर सोढा की सेना के लिए आटा पिसवा दे। एक बार तो पुन अमराणे की ओर अपना घोडा मोड दो।[2]

नरसिंहगढ़ के राजकुमार चैन सिंह ने अंग्रेजो स युद्ध किया और वीर गति को प्राप्त हुए। उनके सम्मान मे राजस्थान एव मालवा मे एक लोक गीत प्रचलित है। इस गीत के अतिम भाग म कहा गया है कि तुमने

---

१ राजस्थानी लोक गीत, म रानी लक्ष्मी चूडावत पृ० १८७-१८८

२ अमराणे म घरट मडाय, हो जी हो म्हारा रतन राणा
घर गर घरटी रे मडाण, आटो नै पीसी ज सोढ़ा री फौज नै
रे म्हारा मायां सोढा, एक तो अमराणे घाडो फर। वही पृ० १९०

अपना सिर कटवा कर सम्मान बढा लिया। तुम्हारे मुख पर गुलाल उड रहा है। तुमने सोहोर की छावनी (अंग्रेजो की) पर धावा बोलकर अन्त तक युद्ध किया।[1] यहा गुलाल निस्सदेह कीर्ति का ही गुलाल है जो वीर चैन सिह के मुह पर उड रहा है।

इनके अतिरिक्त भी अनेक वीर हुए हैं। डूग जी, जवार जी, तथा सूरज मल चौहान भी १८५७ के क्रातिकारी थे। इनके जीवन से सम्बन्धित गीत एव दोहे भी प्रचलित हैं। वस्तुत हमारे स्वतंत्रता सग्राम के इतिहास की सही सामग्री लोक गीतो मे सरक्षित है। आज इन गीतो से इतिहास को नए तथ्य मिल रहे हैं। इन वीरो के प्रति अभिव्यक्त भाव सुमनो से इतना स्पष्ट हो जाता है कि १८५७ की जन क्राति के पीछे जन-मानस था और समस्त जनता क्राति के उन अग्रदूतो के साथ थी। □

---

१. सीस कटायो मान बन्धायो
मुख पै उडै रे गुलाल
गीवा मे डेरा डाल्या
धड स कर्यो रे जवाब।
राजस्थानी लोक गीत —सं० रानी लक्ष्मी कुमारी चूडावत पृ० २०१

राजस्थानी लोकगीतो मे वीर पूजा की भावना

राजस्थान वीर प्रसू है इतिहास इस का साक्षी है । राजस्थानी अभिजात साहित्य भी वीर भावना से ओत प्रोत रहा है। राजस्थानी साहित्य एव जीवन मे शृगार एव वीर रस का अदभुत सम्मिश्रण है । यदि राजस्थानी पुरुष का चित्र बनाया जाय तो उसका एक पाव सुन्दर शया पर और दूसरा रण भूमि में रखना होगा । एक हाथ कामिनी के कुच पर होगा तो दूसरा हाथ तलवार पर । साहित्य मे भी यही चित्र सवत्र दिखाई देता है । क्या नारी क्या पुरुष सबके जीवन म एक ओर जहा शृगार की उद्याम बगमती धारा प्रवाहित है वही वीरता की भी । जीवन का यह अदभुत रूप देखते ही बनता है ।

यहा सव प्रथम राजस्थानी अभिजात साहित्य से एक दो उद्धरण रखग । यहा मरण त्योहार को ही मगलमय गिना जाता रहा है । युद्ध भूमि म यहा वीरो के मुख पर दीप्ति छा जाती है ।

सर न पूछ टीपणा सकुन न देख सूर ।

मरण नू मगल गिण समर चढ मुख नूर ।। — बाकीदास

यही जीवन का आदश रहा है ।

यहा की माताए भी अदभुत धात की बनी हुइ है । वे पुत्र को पालन म झुलाते समय ही शिक्षा देती है कि अपनी भूमि किसी का मत दना भूमि हत मर मिटन म ही महानता है । यथा

पूत सिखावे पालण, हालरियो हुलराय ।

इला न देणी आपणी मरण बडाई माय ।।

——सूयमल्ल मिश्रण

यदि यह भावना यहा के जीवन का आदश नही रही होती तो राणा प्रताप सांगा गोरा बादल जस वीर कहाँ स आते ? माताओ की ऐसी शिक्षा ही बालक को देश क रक्षाथ प्राणोत्सग का प्ररणा देता रहा है ।

एक राजस्थानी लोरी देखिए । माता के हृदय मे बालक को महान्
ने की अभिलाषा है । जन्म के साथ ही माता ने उसको कह दिया—हे
क ! यदि तू मेरी कोख को ठंडी करे तो मैं तुझे अच्छी जन्म घूँटी दूँ ।

X X X

दुग्ध पान कराते समय कहती है — तू श्वेत दुग्ध का पान कर रहा है
पर कायरता का कलंक मत लगा लेना । राजस्थानी माता का स्तन-पान
विषपान से कम नहीं है । उसके वक्ष से दूध पीने वाले को दूध का मूल्य
काना होगा । वह दूध भेड़-बकरी या गाय-भैंस का नहीं वरन् सिंहनी का
है । उस दूध की लज्जा रखने के लिए प्राणों की आहुति देनी होती है ।

X X X

ालक को रण खटोले में सुला, लोरी गाते हुए मा कहती है—मैं तुझे सुला रही
, किन्तु इस शर्त पर कि तू रण-क्षेत्र में 'शत्रुओं की चतुरंगिणी सेना को
गाढ़ निद्रा में सुलायेगा । झूले को पेंग देती हुई प्रत्येक पेंग के साथ उसकी
क्ति है कि मैं तुझे जितनी पेंगें दे रही हूं, उतनी ही बार तुझे इस पृथ्वी को
हलाना होगा ।[1] माता का बालक के प्रति वात्सल्य सेंतमेत में ही नहीं है ।
वह मानो उससे सौदा करती है । उसकी ममता जन्म घूटी पिलाने,
लालन-पालन करने और यहाँ तक कि झुलाने का भी मूल्य मांगती है ।

राजस्थानी साहित्य में वीरों का सदैव यथोचित सम्मान किया गया

---

१. बाला पाखा बाहर आयो, माता बैण सुणावै यूं ।
म्हारी गोद मिलाय रे बाला, मैं तनै मरवरी घूटी दूं यूं ।

X X X

बालो गोदी दूधा चूगै, दूध चूंगावन वाली यूं ।
धोळै पय पर कायरता रो काळो दाग मनाय नूं ॥

X X X

रण खटोलै बाळा सूत्यो, नारी देवा बाली यूं ।
रण श्वेतां चवरंगी निन्दा, गाढ़ी नींद, सुवाय यूं ॥
माता नूंनै वालो झूलै, झोटे झोटे वाणी यूं ।
उतणो वार हिलाय गिरधवी, मैं तनै जितरा झोटा दूं यूं ॥
—राजस्थानी लोकगीत—स० डा० स्वर्णे, पृ० ५१-५२

अत वह युद्ध म जा भिडा । उसने रेतीली भूमि म बढ-बढ कर भालो स प्रहार किय और बछियो से घमासान युद्ध किया । घायल वीर ने घुटनो के बल बैठ कर बालू मिट्टी म झुक झुककर तलवार चलाई । उसन झाडी-झाडी म शत्रुओ की समाधिया बना दी और घर-घर म विधवाएँ कर दी । उस वीर का सिर कट गया फिर भी धड लडता रहा, रक्त क नाले बह निकले । गीत इस प्रकार है–

शूरा आ रण म जूँझिया
हयाया वठा ओ दादा जी बरज रह्या, बटा मती जावो रे राड ।
शूरा
जाया आछी ऊमर वाली वेस म शूरा कूकर झाबोला तरवार ।
शूरा
दादाजी पाछा फरा ता म्हारो कुल लाजे, लाजे माता बाइ रा थान ।
शूरा
शूरा भाला रालया जी बालू रेत म शूरा बरछया री बाजो घमरोल ।
शूरा
शूरा गाडी वालो जी बालू रेत म, नम-तम वाही तरवार ।
शूरा
शूरा झाडया झाडया व्हगी ददलया, शूरा म्ह व्हगी राड ।
शू ।
शूरा माम पडिया जो धड तडफियो शूरा रगतारा मच्या खोखाल ।
शूरा आ रण म जूझिया ।[1]

यत्र व्यक्ति की वीरता का चित्रण देखन को मिलता है । झुझार जी का रतजगा भी किया जाता है उक्त अवसर पर रात भर झूझार जी क जी गीत गाये जात हैं । झुझारजी को नगर रक्षक माना जाता है । उन्ह चूरम तथा नारियल पूजा सामग्री क रूप म चढाय जात ह यथा–

झुझारजी म्हेला पाढिया राणी आजवया
आपरा नगरी रा रुखवार
झुझार जी बाग पकड घोड चढिया
झुंझार जी चढ़ चढाव आपरे चूरमा

१ राजस्थानी लोकगीत—रानी लक्ष्मी कुमारी चूडावत, पृ० १३

चढ़े चादियाना नालेर

झुझार जी बाग पकड घाड चढ़िया।[1]

राजस्थान के लोक देवताओ म अधिकतर वे ही हैं, जिन्होने निस्वार्थ भाव से परोपकार के लिए प्राणात्सग किया है अथवा जो देश एव जाति की मर्यादा के लिए प्राणा का बलिदान कर गये हैं। वीरवर श्री तेजा जी महाराज, पाबू जी, गोगा जी, आदि अनेक वीर इसी शृखला की कडियाँ है। लोकगायक अपने परिवेश म होन वाली घटनाओ के प्रति सदैव सजग रहा है। जिन्होने सराहनीय काय किये उनको उसने सदा सवदा के लिए अमर कर दिया है।

श्री तेजा जी महाराज ने माना गूजरी की गायो को मीणो से युद्ध में छुड़ा कर गूजरी को लौटाया था। आपने एक जलते हुए सर्प को आग से भी निकाला था। परिणाम स्वरूप नागराज कुपित हो डसने को तैयार हुए। जब तेजा जी महाराज गाया को माना गूजरी को सौंपकर लौटे तो नागराज की बाबी पर जाकर डँसन के लिए आमत्रित किया। व प्रतिश्रुत थे। पूरा शरीर घावो युक्त होने के कारण नागराज ने जीभ पर पर दश लगाया। उन्होने तेजा जी को यह आर्शीवाद भी दिया कि तुम्हारी पूजा होगी। नाग से दशित तुम्हारे यहा आने पर बच जायेगा। उनके जीवन से सबधित एक गीताश यहा उद्धृत किया जा रहा है—

आया आयो वासग नाग, कँवर तेजा रे, आयो वासग नाग
आय नै लागे रे तेजा वामग कादियो
वामग तो बात छै तेजा तनै खायना
आई-आई चोरा री धार कवर तेजा र
नामू रो ता गाया तेजा चार ज ल गया
ने सामूही बोली आयो घर जवाई र
काला ने क्यो नो खाया रे तेजा घर माही आय जा
मूणी सूँ हू वीन्यो रे तेजा कठ खावसूँ
दीनी जीभ तो काढ़ रे
रे कवर तेजा दीना जीभ तो काढ़,
जीभ नै तो दीनी रे काला नाग सावियो।[2]

---

१ राजस्थानी लोक गीत—रानी लक्ष्मी कुमारी चूड़ावत पृ० १५

२. राजस्थान भारती-भाग ५ अंक २ नवम्बर १९५६ पृ० ७३-७४

गोगा जी भी ऐसे ही वीर पुरुष हुए हैं। वे भी गायो की रक्षा करते हुए वीर गति को प्राप्त हुए थे। एक गीत की पंक्तियां देखिए—

गायो ने घरी घरमो वाछड़, बाध्या जाय गोवाल

X X X

पेहला छोडो बाई री गायड़ो, दूध पीवे बच्छ राज ओ
भरिया तो नाडा धर्मो नाडला, भरिया समद तलाव ओ।[1]

उन्हें भी सर्प के देवता के रूप में पूजा जाता है। इनके द्वारा गायों को छुडाने का उल्लेख केवल इस गीत में ही मिलता है। अन्यत्र नहीं। हाँ फिरोज शाह तुगलक के साथ युद्ध में इनके मारे जाने की बात जरूर प्रसिद्ध है।[2] भाद्रपद कृष्ण नवमी को गोगा जी की पूजा होती है।

पाबू जी भी ऐसे ही एक विख्यात वीर हुए जिन्हें देवता के रूप में आज भी पूजा जाता है। उन्होंने देवल नामकी का चारणी के गायन के रक्षार्थ प्राण दिए थे। वे विवाह वेदी से उठकर देवल की गायों के रक्षार्थ गये थे। जिनराज खीची से गायो को छुडाने लिए उन्होंने युद्ध किया और गायों को छुडाकर वीरगति को प्राप्त हुए। इनकी सद्य विवाहिता वधू सोढी भी साथ ही सती हुई। रात्रि जागरण मे उनका निम्नांकित गीत गाया जाता है—

भालेना केर कामा म भाना भलाकया
कं कोसा म ए केसर घोडी की हीस
महेल्या ए पाल पधारिया।[3]

इस गीत में मोढी जी को पाबू जी का दर्शन के लिए आतुरता प्रकट की जा रही है।

उपरि वर्णित तीनो वीरो के जीवन से संबंधित जो गीत प्रचलित हैं, उनमें एक बात समान है–गायो के स्वार्थ में तीनो ने प्राणोत्सर्ग किये थे। गाय के प्रति लोक जीवन में आज भी बड़ी श्रद्धा है। जिन लोगो ने गाय को माता मानकर उसकी रक्षा की उन्हें जन मानस भला कैसे भूल सकता है? आज

---

१ राजस्थानी लोक गीत—स० डॉ० दाधीच, पृ० ४२
२ मरु भारती—वर्ष ३ अंक ३ अक्टूबर १९५५ पृ० १०-११
३ राजस्थानी लोकगीत—सं० रानी चूंडावत पृ० ११

भी इन वीरों की पूजा होती है और इनके जीवन एव कृत्यो से सबधित गाथाएं श्रद्धा एव सम्मान पूर्वक गाई जाती हैं।

य तीन ही नहीं, वरन् देव जी, रामदेव जी आदि अन्य अनेक वीर पुरुष भी हुए हैं जिन्होने अपने जीवन काल मे वीरोचित कार्य किए थे। उन्हें भी जन-मानस भूल नही सका है। इस विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि राजस्थान शौर्य एव वीरता का केन्द्र रहा है। वहा वीरो की लम्बी परम्परा रही है। वीरो को वहा सर्वदा अपेक्षित सम्मान मिला है। वीर पूजा की भावना ने लोक-मानस मे वीर भावनाओ को सीचा है जिससे वीर-भावना रूपी वल्लरी सदैव पल्लवित एव पुष्पित होती रही है। इसी का परिणाम है कि राजस्थान के इतिहास का भारतीय इतिहास म विशिष्ट स्थान है। दश के लिए यहा के वीर सदा वडे से बडा बलिदान करन को तैयार रहे हैं। □

(क) आउवा ठाकुर कुशाल सिंह

सन् १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने वाले वीरों में राजस्थान के आउवा ठाकुर कुशाल सिंह जी का नाम अग्रण्य है। कुशाल सिंह जी इस संग्राम के नायक कहे जा सकते हैं। ऐसे वीर हमारे राष्ट्र के लिए गौरव हैं। आपके नेतृत्व में इस संग्राम में भाग लेने वाले मारवाड़, आसोप, गूलर, आलणियावास, लाम्बिया, रूपनगर, लसाणी, आसिन्द आदि स्थानों के वीर क्रान्तिकारी भी थे। इन सब वीरों का संकल्प था अंग्रेजों को देश से बाहर निकालना और अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाये रखना। इसी संकल्प की पूर्ति के लिए इन वीरों ने प्राणों के उत्सर्ग किये। इतिहास ने इन वीरोंको यथोचित सम्मान नहीं दिया, किन्तु ऐसे वीरों की उपेक्षा जन-मानस कैसे करता? जन क्रांति के साथ जन मानस था। जब क्रांति के सूत्रधार स्वतंत्रता की रक्षा के लिए मर-मिटे तब जन-मानस ने शब्दों के श्रद्धा-सुमन उन योद्धाओं को अर्पित किये। आज भी होली के अवसर पर चंग के स्वरों में स्वर मिला कर इन वीरों को जन-मानस भाव-सुमन अर्पित करता है। आउवा ठाकुर का भव्य चित्रण एक लोक गीतांश में देखिए—

ए आउ आलो अनड़ो रे ठाकर!
बैठो-बैठो मूछियां में बल घाले रे!
बैठो-बैठो ठाकरां ने बोल भावे रे!
मरणो हालरियो! नारे मरणो हालरियो!
आउ आना अनड़ो ठाकर थारे हाल माथे मेड़ी ओ!
थारी मौत नेड़ी ओ!

अर्थात् आउ वाला बांका ठाकुर बैठा-बैठा मूछों पर बल दे रहा है। वह बैठा-बैठा ठाकुरों पर व्यंग कर रहा है। अतः मरने के लिए निश्चित रूप से चलना है। नहीं, मरने के लिए अवश्य चलना है। अपना यह दृढ़

स्वय प्रकट करने के पश्चात् वे ठाकुर से कहते हैं कि हे आउ के बाके ठाकुर
रे हाल (प्रथम खण्ड पर बना कमरा) पर मेडी (खपरेल से छाया दूसरी
बिल का कमरा) बनी हुई है। अब तेरी मृत्यु निकट ही है।

यहा आउवा ठाकुर का भव्य रूप ही नही दिखाया गया है, उसके
त्यु के निकट होने का सकेत भी किया गया है। पर राजस्थानी वीर क्या
त्यु से डरेंगे? उनके लिए तो मरण ही मगल त्योहार है। तभी तो
जस्थान के प्रसिद्ध कवि बाकीदास ने कहा है—

'सूर न पूछै टीपणो, शकुन न देख सूर।

मरणा नू मगल गिणै, समर चढ मुख नूर॥'

अर्थात् सूर कभी भी पत्तरा (टीपणा) मे ग्रह-नक्षत्र योग नही पूछते
हैं और न वे कभी शकुन का विचार ही करते हैं। वे तो मरने को ही मगल
मानते हैं, उनके मुह पर युद्ध मे ही 'नूर' (कान्ति) चढता है। वीर भूमि
राजस्थान की यही मान्यता है। आउवा ठाकुर कुशाल सिह जी युद्ध की
व्यवस्था कर रहे हैं। वे अपने भाइयो को इस मरण त्योहार पर आमन्त्रित
कर रहे हैं —

"एक तो नगारो म्हारो भाइया म बाजे ओ !
दूजोडो नगारो ठठ बाजे ओ, झगडो आदरियो !
भाईया भावे तो भाया बगा आज्यारे मरणो हालरियो !
केसर न कसुम्बो रग कडावा म घोलो रे !
राठोडो रा रूमालिया रगाई लिज्योरे, मरणो हालरियो !
आउ ने लडाई लागी ओ, मरणो हालरिया !
एक तो परवानो म्हारा भाईपा मे मेलो रे !
रायपुर रो राडियो मरेउ डरयो रे काचो छातो रो।
ए हरणां-हरणा घोडा ठाकर राठोडा न दीज्यो रे !
एक तो परवानो म्हारो बरजोडा ने दीज्यो रे !
राठोडों री अगरखिया सिवाई लिज्यो रे !
आउ ने लडाई लागी ओ मरणो हालरिया !

युद्ध की व्यवस्था करते हुए ठाकुर कुशाल सिह जी कहते है कि
एक नगारा तो भाइयो मे बज रहा है और दूसरा ठठ युद्ध भूमि म।

भाइया स वे अपान करत है कि यदि तुम्हे भाई प्रिय हैं ना तुम शीघ्र आना, मरने चलना है। केसरिया तथा कसुम्बा रग कडाहो म घोर नो और उस रग स राठौडो क रूमाल रगाना। अब मरन चलना है। भाइया का शीघ्र मरा यह सदेश भजो। रायपुर का क्लीव राजा नो मरन स डर गया है। हरण हरण (बढिया बढ़िया) घाउ तो राठौडा को दना और मेरा एक परवाना दर्जी को दना और राठोडा के लिए अग रख सिलवा लेना। आज आउ मे युद्ध हो रहा है मरन को प्रस्तुत हो जाओ।

गीत म जहा वीरवर आउवा ठाकुर की प्रस्तुति क स्वर गूज रहे हैं वही रायपुर क राजा का मौत स डरन वाला कच्ची छाती वा राडिया (क्लीव) कहा गया है। कितन स्पष्ट शब्दो म भत्सना की गई है? कुशाल सिह जी राठौडा को कसरिया बाना पहनन का सदश द रह हैं।

आउवा ठाकुर क प्रति राजस्थान क बच्च बच्च म सम्मान का भाव है। इसका कारण यही था कि आउवा ठाकुर क अग्रजो स विरोध क साथ जन मानस था जन जीवन था। फिर प्रत्यक राजस्थानी को स्वाधीनता प्राणो स अधिक प्रिय है। राजस्थान का ही नही भारत का प्रत्यक नागरिक स्वतन्त्रता का महत्व समझता रहा है और प्राणो का अपक्षा वह सदा स्वतन्त्रता को ही अधिक महत्व दता रहा है। मवाड क कोठारया ग्राम म उनका भव्य स्वागत हुआ उसका वणन दखिए। यह स बात का प्रमाण है कि एस वीरो क साथ जन मानस था—

बाकडला मूछा रा ठाकर कोठारयो म आयो रे!
अगरेजो रा दुसमण न मवाड बदायो र!
क झगडा झलिया!
हा र झगडो झलियो झगडा मा, बाद माडियार!
क झगडा झलिया!
राजड राण दुरगा न मोत्या थाल बदाया र!
अगरजा उ आयड न राठौड आया र!
मोत्या बदायो!
हा र मोत्या बदायो दश म अमराव आयो र!
मोत्या बदायो!
क झगडो झलिया

अर्थात बाकी मुछो वाला ठाकुर करेठारया (मेवाड का एक गाव) म आया। अग्रजों क शत्रु का मेवाड न स्वागत किया। उसन युद्ध स्वीकार किया। हा उसन युद्ध स्वीकार किया। युद्ध किया। बाक वीर राणा का स्वागत मोतियो स थाल भर कर किया गया। अग्रजो से झगड कर राठौड आया और उसका मोतियो स स्वागत किया गया। हाँ, उस वीर का मोतिया म स्वागत किया गया जब वह दश म आया। मोतियो स उसका स्वागत किया गया क्योकि उसन युद्ध स्वीकार किया।

ऐसे वीरो का वीर भूमि के निवासियो न अपेक्षित स्वागत-सत्कार किया। किन्तु खद है कि स्वतत्रता सग्राम क उन सनानियो को इतिहास न वह स्थान नही दिया। आज भी उन सनानिया की गाथाए जन जीवन को कठस्थ हैं लोक मानस ऐसे वीरो को कैसे भूल सकता है ? लोक गीत न केवल मनोरजन करत है न केवल जन जीवन का वास्तविक स्वरूप ही हमार सम्मुख रखत हैं बल्कि य इतिहास के भूले बिसर अध्याय भी हम सुनात हैं। ऐसा इतिहास जो विस्मति के गर्भ म विलीन होन जा रहा है।

इतिहास भूले तो भले जन मानस क्या भूलेगा ? आज भी आउ क युद्ध करन की बात गीतो म चग की थाप पर गूजती हैं—

ढोल बाज थाली बाज
मेलो बाज बाकिया
झूझ आउ ओ !
न ओ ! झूझ आउ आ !
आउवो मुनको मे चावो ओ !
क झझ आउ ओ !

ढोल थाली एव बाकियो (तुरही) एक साथ बज रहे है। आउवा युद्ध मे जझ रहा है। नही ओ ! आउ जूझ रहा ह। आउ सभी दशा मे प्रसिद्ध ह। आउवा युद्ध म जूझ रहा ह। लोक गीतो क य स्वर हम आज भी राजस्थान के अलिखित इतिहास क अध्याय सुना रहे हैं।

यद्यपि आउवा ठाकुर स्वतत्रता सग्राम म सफल नही हो सक। कि तु उनका यह बलिदान आगामी स्वाधीनता सग्राम की नीव का पत्थर ह। इस पत्थर पर अकित आउवा ठाकर का कीर्तिम था युगो युगो तक न

केवल राजस्थान के निवासियों को बल्कि सम्पूर्ण भारतवासियों को देश-प्रेम एवं स्वाधीनता के महत्व का पाठ पढ़ाता रहेगा। वीरों को सर्वदा अपनी मातृभूमि के रक्षार्थ मर मिटने की प्रेरणा प्रदान करता रहेगा। राणा सांगा राणा प्रताप आदि अनेक राजस्थानी वीरों की वीर परम्परा की रक्षा राजस्थानी वीरों ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी की है कर रहे हैं और विश्वास है कि भविष्य में भी राजस्थानी वीर इस परम्परा को अक्षुण रखेंगे। आउवा ठाकुर जैसे वीरों की कीर्ति-गाथा उनके लिए प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करती रहेगी।

□

(ख) सूरज मल चौहान

सूरज मल चौहान राजस्थान क उन वीरों मे से हैं जिन्होंने अंग्रजो के विरुद्ध तलवार उठाई और डाकू की सज्ञा से विभूषित् किये गये। राजस्थान म डूग जी, जवार जी, आउवा ठाकुर आदि वीरो की स्वाधीनता हेतु मर मिटने की जो परम्परा थी उसी परम्परा में सूरजमल भी थे। मातृभूमि रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग करने करने वाले इन वीरो की बडी लम्बी शृंखला है। इस शृंखला का आदि काल के गाल म विलुप्त हो चला, कुछ हो रहा है और यदि हमन समय रहते इसे सहजने का प्रयास नही किया तो हो जायेगा।

राष्ट्रीय सकट की स्थिति म वीरो के त्याग एवम् बलिदान की गाथाए, हमे प्रेरणा देती हैं। हमे राष्ट्र की रक्षा के लिए प्रेरणा देती हैं, आह्वान करती हैं।

सूरजमल अंग्रेजी राज्य के आरम्भिक दिनो मे उनके विरुद्ध लड़ने वाला वीर योद्धा था। उसने अंग्रजो की आधीनता स्वीकार नही की। अपने गिने-चुने साथियो को लेकर वे 'मुडेती' ग्राम (जोधपुर) से निकल पड़े। उन्हें राजस्थानी कवियों ने सदा के लिए अमर कर दिया है। वास्तव में यही अपेक्षित भी था। राजस्थान की कहावत है--'के तो रह् भींतडा के रहे गींनडा।''

वास्तव म भीत या भीत (दीवारें) ही बच जाती हैं, अन्यथा कराल काल के गाल म सब कुछ विलीन हो जाता है। उन के जीवन से सम्बन्धित दोहे घर घर म गाए जात हैं। राजस्थान जहा वीर-प्रसू भूमि है वहा ही वह वीरो को यथोचित आदर सत्कार दन म भी कभी नहीं चूकी है। सूरज मल के प्रति जो सम्मान की भावना लोक-मानस मे अवस्थित है, इसका पता हमें निम्नांकित दोहे मे चल जाता है—

हत्थ मूछा पर हाथ मुत जाला नहरी समद ।

दालिद मत्रू दोय, सकै तो सु सूजड़ा ।।

हे जालिम सिंह के पुत्र वीर सूरजमल जब तुम्हारा हाथ मूछों पर होता है तो दरिद्रता एवम शत्रु दोनों ही कांपने लगते हैं, तुम तरंगयुक्त सागर हो ।

ऐसे वीर का यश पृथ्वी पर कैसे समा सकता है ? दूसरे वीरों का यश तो दस बीस कोस में ही पहुंच पाता है परन्तु सूरजमल का यश तो समूची पृथ्वी पर भी नहीं समा रहा है । यथा—

जस औरा जावेह बीसा दस कोसा बिच ।

महपत्त नह मावेह सुजस इला पर सूजड़ा ।।

रत्न जडित स्वर्ण कंगन हाथों में पहनने वाले पृथ्वी पर तो अनेक है परन्तु हे सूरजमल ! तुम्हारे हाथों में तो देदीप्यमान यश कंगण शोभित हो रहे हैं ।

कुंनण रा कड़ियाह पहरे सौ सारी पृथ्वी ।

जस कंकण जड़ियाह, कर सोहे थन सूजडा ।।

यह कंगण केवल वीरों को ही प्राप्त होते हैं । इन्हीं यश कंगणों को धारण करने की भावना आज तक वीरों को राष्ट्र पर हंसते हंसते मर मिटने की प्रेरणा देती रही है ।

सूरजमल को इन यश कंगणों का मूल्य अपने प्राणों से चुकाना पड़ा था । ये कंगण कितने मूल्यवान हैं ? ईडर (जोधपुर) के राजा करणी सिंह जी का देहान्त हो गया । उनकी पांचों रानियां उनके साथ सती होने को तैयार थीं । किन्तु अंग्रेज रेजीडेन्ट ने उन्हें सती न होने के आदेश दिए । जोधपुर एवं ईडर के सभी लोग चाहते थे कि उन्हें सती होने से रोका नहीं जाये किन्तु अंग्रेजों से शत्रुता मोल लेने का किसी में साहस नहीं था । तभी सती होने की आकांक्षिणियों का अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने वाले सूरजमल चौहान की स्मृति हो आई । राजस्थान के घर घर में सूरजमल के प्रशस्ति गीत गाए जाते थे । सूरजमल के आने पर पृथ्वी धुवाधार कांपने लगती थी और भूरे अर्थात अंग्रेज भागने लगते थे । यथा —

धुआ घोर धूजी धरण कूरम लगी कसक्क ।
सूजी आयो सभरी भूरा लेण भचक्क ।।

उसी वीर को सतियो ने आह्वान किया । जिस समय उनका पत्र सूरजमल के पास पहुँचा वे भोजन करने को बैठे ही थे । वे उस परोसे हुए भोजन को छोडकर उठ खड हुए । इस पुकार पर आधी रात को ही चले आने वाले सूरजमल को लोक कवि ने हिन्दू धर्म की रक्षा करने वाला कहा है। वे आधी रात को ईडर पहुँच और प्रभात म युद्ध हुआ । यथा—

सतिया दाह सुण सुजडा, आयो खड अधरात ।
धर राखड हिन्दू धरम भयो जग परभात ।।

सती होने वाली महिलाओ न मारु की ध्वनि सुनकर यह समझ लिया कि सूरजमल आ रहे हैं। यही जालिम सिंह का पुत्र सूरजमल हिन्दुओ का माली है—

सतिया बाहरु सभरी चढ आयो चहुवाण ।
सूजो जालिम सिंघ रो हे माली हिंदवाण ।।

वीर सूरज न जाते ही उन्हे सती होने को कहा और स्वय रेजिडन्ट से मिलने के लिए छावनी के लिए चल पडा । सूरज मल का नाम सुनकर भूरे अथात अग्रज भाग गय । यथा—

सूजा री धाका सुणी, आज गया भूराह ।
सतियां जलवा सचरी, बिडद पाव पूराह ।।

सूरजमल रेजिडन्ट स मिला । रेजिडन्ट न सूरजमल से पूछा—तुम कौन हो ?'

सूरजमल'—सूरज मल न उत्तर म कहा ।

रेजिडेंट न कहा— सूजा डाकू ।'

डाकू ना आप कह रह है । मैं तो सूरजमल राजपूत हूँ ।' उसन रेजिडन्ट स पूछा—'आप महिलाओं का सती होने स क्यों रोकत है ? उन्हे सती होने की आज्ञा क्या नही दत है ?'

'जीवित स्त्रियों को नही जलाया जा सकता ।' रजिडन्ट न सूरजमल को उत्तर दिया ।

इस उत्तर को सुन सूरज मल ने कहा कि वे सती तो होंगी ही। जाकर देख लो। ईडर में सतियों की चिता स निकलने वाली लपटों तथा धुए की ओर सकेत करते हुए उन्होंने कहा कि अपनी आंखो से देख लो। रेजिडेन्ट ने अग्नि की प्रज्वलित शिखाओ को देखा। वह आग बबूला हो गया और उसने सूरज मल को बन्दी बनाने के लिए आदेश किये। परन्तु सूरजमल छावनी से निकल भागा। रेजिडेन्ट सेना लेकर ईडर की ओर बढ़ा, परन्तु मार्ग में सूरजमल ने उस पर धावा बोल दिया। इस धावे का वर्णन इस प्रकार हुआ है--

आयो ताहर ऊपरे, सज फौजा घमसाण।
सूजो गोरा हुवके, भयो तमासो जाण।।

दूसरे दोहे में कवि ने फिर कहा है कि पच्चीस वर्ष की अवस्था में सूरजमल राजपूत ने तलवार बजाई। वह सतियो के सहायतार्थ अंग्रेजो से लड गया, यथा__

मगर पचीसा माय, रूक बजाई रागडे।
सतियां करवा साय, अंग्रेजों सू जा अडे।।

आगे कवि ने कहा है कि जब अंग्रेज घमासान रूप से लडने आये तो सूरजमल न गोरो की धाणी ही निकाल दी--

गोरो मिर घममाण, आया जद अगरेज ग।
गोरा हुदा घाण सरवरा काढियो सूजडा।।

यह तो हुई सूरजमल की वीरता की गाथा। भारतभूमि में ऐसे अनेक सूरजमल हुए जिन्होंने राष्ट्र के रक्षार्थ अपने प्राण त्याग दिये हैं। आज पाकिस्तान एव चीन भारत को चुनौती दे रहे हैं। आज सीमान्त पर जो वीर तैनात है उन्हे सूरज मल जैसे वीरो की गाथा सदा प्रेरणा देगी। ऐसे वीरो पर हमारे राष्ट्र एव समाज को गर्व है।

(ग) डूंग जी–जवार जी

डूग जी— जवार जी राजस्थान के प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी हैं। इनकी वीरता के गीत घर घर मे गाए जाते हैं। उनको लोग बडे सम्मान से याद करते हैं। उनके जीवन से सम्बन्धित लोक-गाथा को लोग बडे चाव से सुनते हैं। अग्रजो ने उन्हे डाकू कहा परिणामत उन्हे इतिहास में योग्य स्थान नही मिला है। वस्तुत ये य प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी जिन्हे अंग्रेजी शासन ने डाकू कहा है। इनके वास्तविक स्वरूप को लोग-गायक ने सहेज कर रखा है। कितना अच्छा होता कि स्वतन्त्र भारत का इतिहासकार उनके एव अन्य असख्य वीर सेनानियो के कृत्यो को प्रकाश म लाने की चेष्टा करता। वस्तुत जिन्होने स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये प्राणो का मोह त्याग कर अग्रेजी सत्ता म युद्ध किया, उनका योग्य मूल्याकन होना बाकी है।

डूग जी का पूरा नाम डूगर सिह जी था। वे सीकर राज्य के अन्तर्गत बठाठ ठिकाने के जागीरदार थे। जिस समय राजस्थान के महान अधिपति विदेशी सत्ता के सम्मुख झुक गये उस समय डूग जी जैसे वीर स्वाभिमानी व्यक्ति अकेले ही क्रातिकारी बने। उन्होने विदेशी सत्ता स्वीकार करने की अपेक्षा भयकर कष्ट उठा कर भी स्वतत्रता की रक्षा करना श्रेयस्कर समझा। उन्होने अग्रेजो की अधीनता स्वीकार कर स्पष्ट शब्दो मे युद्ध करने की घोषणा कर दी। परन्तु कहा एक छोटा जागीरदार और कहा अग्रेजो की अतुलित शक्ति ? फिर भी डूग जी ने यह प्रण किया कि वे जीते-जी विदेशी सत्ता को कभी स्वीकार नही करेगे। उन्होने इस प्रण को निभाया भी। जब अग्रजी सेना ने बठोठ को घेर लिया तो डूग जी अपने कुछ साथियो को लेकर बठोठ से निकल पडे। अग्रजो की विशाल सेना से आमने-सामने वे युद्ध करने की स्थिति म तो थे ही नही अत वे अवसर देखकर उसकी सेना पर यदा-कदा धावा बोल देते थे और घोडे, अस्त्र-शस्त्र आदि छीन कर भाग जाते थे।

उनके जीवन से सम्बन्धित लोक-गाथा म वर्णित जीवन एव घटनाओ

को देखना-परखना अनुचित न होगा। यह लोकगाथा स्वाधीनता संग्राम का एक अलिखित अध्याय है, जो भोपो की सारंगी के स्वरों मे स्वर मिलाकर आज भी डूंग जी जवार जी की जीवनी को सुना रहा है।

सिवरू देवी सारदा सदा भवानी दाहिने,
आज नाव दुरगा न सिंवर लू माता जी ने मनाऊ।
गढ बठाठ म ढली जाजमा गहरी उडे मतवाल
इक इक करे बोतलो प्याला करे पुकार॥
दारू का मतवाला बोले सुण ले लाटिया जाट
सग हो जा डूंग सिंह क करा मलक म नाव।
एक बार लूटा छावणा जद मरदो के नाव॥

मदिरा के नशे म डूंगर जी ने लोटिया जाट से कहा कि मेरे साथ हो जावो। मुल्क म नाम करें। एक बार छावनी को लूट तभी मर्दों का नाम हो सकगा। लोटिया जाट न इस प्रस्ताव का विरोध करते हुये डूंग जी स कहा कि मेरी बात मानो छावनी लूटन का प्रयास छोड दो। छावनी म अंग्रेजो का राज्य है और व कैद कर लगे। लोक कवि के शब्दो म लोटिया का कथन है—

लोटियो जाट तडाके बोल्यो सुणो डूंगजी बात,
म्हारो कैणो मानो डूंगजी मती छावनी जाय।
छावणी म तपै फिरंगी धर कैद क माय॥

लोटिया क इस कथन पर डूंग जी ने उस पागल कहा और कहा कि मरना-मरना क्या कहता है मरना तो एक ही बार है। मर्द क मरन पर जग मे प्रसिद्धि मिलती है किन्तु राडिया (क्लीव) तो मरन पर वह ससार म कुख्यात हो जाता है। मा ने भी डूंग जी को छावनी लूटन स रोकने की चेष्टा की किन्तु सब व्यर्थ रहा। अत म डूंग जी छावनी लूटन चल पड। यथा —

एक बार लूटा छावणी जद मरदा को नाम।
कदे न राडिया रण चढिया कदी न बाजी बम्ब,
जगड बम्ब वा मरिया नगाडा पडी नौबता चाट।
डाको दन म चडियो घावडो बिना सेवरे बीद
अड बड धड बड घोडा दौड नल ऊटा का बौझ
डूंग सिंह का लाल रेखता अंग्रजो पर गाज॥

उन्होंने फिर कहा कि वीरों का नाम तो तभी हो जब कि छावनी लूटी जाय। राड़िया न कभी रण चढ़े और न कभी घमासान हुआ। नक्कारे बजने लगे और नोवत (बड़ा नक्कारा) पर चोट पड़ी। चोट देकर डूंगरसिंह लूटने के लिए चल पड़े मानो बिना मवरे बींद (दूल्हा) चल पड़ा हो। धाड़ और ऊंटों के दौड़ने की आवाज आने लगी और वीर डूंगरसिंह का माज अंग्रेजों पर गरजने लगा।

वे नसरूपीवाद के पास पहुंच कर रुके। लोटिया जाट व सावता मीणा नटों का वेष बनाकर छावनी में गये और माग, सेना, सैनिक-सामग्री, धन आदि के समाचार उन्होंने डूंगर सिंह जी को आकर दिये। वे अंग्रेजों की धन सम्पत्ति देखकर चकित रह गये परन्तु पहरे तथा सैनिक सामग्री को देखकर भयभीत भी हुए। उन्होंने डूंगरसिंह जी को लौटने की सलाह दी। लौटिया जाट तथा सावता मीणा ने लौट कर छावनी का जो वर्णन किया उसका अंश कवि के शब्दों में निम्नांकित है—

क्या कहूं डूंगर जी कियो न माल्यू जाय;
छाती भरीजे हियो उजल नैनां ढलके नीर।
मान माल तो घणा दखिया माल फिरंगी पास,
पन्ना की सन्दूक दखी गेकड भरिया मजूस॥
नागी तलवार हाथ मे पहरो बडो हुसियार,
लाट साब जी बडा साव जी दाई छावणी माय,

साथ ही उन्होंने डूंगर सिंह जी को चेतावनी भी दी कि वे आपको बंदी बना लेंगे और काले पानी ले जाएंगे। हे सिंह! वे तेरा सिर काट देंगे और तू घर के बूल फिर स्वप्न में ही देख पायेगा अर्थात् आप घर नहीं लौट सकेंगे—

पकड़ घरेला कैद में काले पाणी ले जाय।
भर को माथो सको काट सपना मे देखलो घर का रूखड़ा॥

उन्होंने डूंगर सिंह जी को सलाह दी कि छोटे-छोटे गांव लूट लो और घर चलो। किन्तु डूंगर सिंह जी पर न गांव लूटने थोड़े ही निकले थे। उन्हें तो अंग्रेजों को लूटना था। उस विदेशी सत्ता का विरोध करना था, अतः उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा —

डूंग जी ने पुष्कर म सारे खजाने को लुटा दिया। ब्राह्मण, चारण, भोपे आदि को मोहर बाटी पूनम के दिन सारे मेले को अपनी ओर से भोजन दिया। तत्पश्चात वे झडवासे (अजमेर जिले का गाव) क लिये रवाना हुए। वहां डूंग जी की ससुराल थी। झडवास म उनके साले ने ठहरने का आग्रह किया। कहा कि हे जीजा जी! आप बहुत दिनों के बाद आए हैं, गोठ (दावत) जीम कर ही जाइए--

झडवासा म सासरो साले लियो ढाब।

घणा दना सू आया जीजा गोठ जीमतो जाय ।।

डूग जी न अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी। मैं छावनी लूट कर आया हू यदि तुम्हारी हिम्मत हो तो रोको अन्यथा जाने दो। साल ने डूग जी को शपथ पूवक विश्वास दिलाया--मेरे किले म आकर रहिए। यदि अग्रजों को ले जाना ही है तो किले को तोड बिना नही ले जा सकग। वीर हृदय सत्यनिष्ठ डूग जी उसकी बात मान गये। उन्हे साले ने खूब मदिरा पिलाई और अग्रजो को उसने बुलाया कि डूगजी को आकर पकड ले। उसने स्वेच्छा म ऐसा नही किया था। अग्रजो की कटनीति मे फसकर लालच एवम भय क कारण वह अपने जीजा का ब दी बनवाने के लिए तैयार हो गया। लालच म सुध बुध खोकर अपनी बहन की माग का सि दूर पोछने के लिए वह तैयार हो गया। डूग जी जब मदिरा पीकर किले म सो रहे थे उन्हे लोह शृंखलाओ म जकड कर आगरा ले जाया गया। इस प्रकार झडवास क भगसिह न (डूगर सिह का साला) अपन बहनोई को ब दी बनवा दिया। भारत का इतिहास उठाकर देख तो ऐस एक नही अनेक भगोसिह हुए हैं। यदि ये नही होते तो भारत का इतिहास ही दूसरा होता। जयच द की श्रेणी के इन लोगो न स्वार्थवश अपने देश की एकता एव स्वतत्रता को भग किया।

डूग जी के आगरा म ब दी बनाए जाने के पश्चात बठोठ मे एक दिन होली के अवसर पर लोटिया जाट जवार सिह जी आदि लोग मदिरा पान कर रहे थे। उसी समय रनवास म डूग जी की पत्नि आई और उन्ह धिक्कारते हुए बोली कि तुम्हारे इस मदिरा पान को धिक्कार है। तुम्हारा काका कैद म पडा है। हे क्लीब राजपूत तुम्हें धिक्कार है।

कावो महरा उतरो दारू म धिरकार

काका थारा पडिया कद मे घर गडिया रजपूत ।।

काकी जी द्वारा बिंध गये इन व्यंग बाणों से जवार सिंह पीड़ित हुए और कहने लगे—हे काका। तुम व्यंग बचन मत कहो ये बीरों को लगते हैं। बीरों को ही लगते हैं कापुरुषों को नहीं। काकाजी ने अब तक छोटे मोटे गांव लूटे। इस बार छावनी लूटी तो जेल में पड़े हैं।

मत बोल काकी बोलणा मरदां के लाग बोल,
मरदों लाग बोलणा गाडू के लाग नाय।
छोटा मोटा गांव लूटिया लाया पराया माल,
अबके लूटी छावणी कांकासा पड़िया कैद ॥

इस पर डूंग जी की पत्नी ने जवार जी से कहा है जवार जी! तुम रानी नाम धारण करो और औरतों के समान धीरे धीरे बोलो। धीरे धीरे बोलते हुये हाथ में कांच की चूड़ियाँ पहन लो। तुम अपने हाथ का खांडा मुझे दे दो। मैं स्त्री जनित स्त्री या तो अपने पति की बेड़ी काट दूंगी या उनके साथ मर जाऊंगी। मेरे चूड़े (सुहाग) की रक्षा भगवान करेंगे। यथा

रानी नाव कुवाय जुवारा छाने छाने बोल
छाने छाने बोल ज्वारा चुड़ी काच की पहर।
थारा हाथ को खाण्डा मुझ दे मैं तिरया की जाई।
के खावंद की बेड़ी काट दू के मर जाऊं लार,
चूड़ा की प्रतिज्ञा भगवान राखसी ॥

जवार जी को काकी के ये बचन चुभ गये। उसने मदिरा की बोतल तोड़ दी और पांच पान का बीड़ा मंच में फिरवाया। उसने घोषणा की कि नर रत्न वही है जो आगरा जाय। उस फिरते हुए बीड़े को लौटिया जाट ने लिया और मूछों पर हाथ फिराया। उसने योगी का वेष धारण किया और डूंग जी की खबर लाने के लिए आगरा चला गया। वह अपने बुद्धि-बल से सूचना लेकर आ भी गया। तब सांवता मीणा ने गाली देते हुए जवार सिंह को कहा हे गोली (दासी) पुत्र! तुझे धिक्कार है। तू जाजम बिछा कर बैठा है। तेरे काका जी की खबर लौटिया जाट लेकर आया है। जीवन से मृत्यु भली कैद का तो काम ही बुरा यथा—

दूर गोली का जाया ज्वारा बेठो जाजम ढाल
थारा काकाजी री खबरिया लायो लोटियो जाट
जिवा स मरणा भलो बुरा कैद का काम ॥

इस व्यंग को सुनकर जवार जी ने गाव-गाव मे पत्र भेजे और अपने सारे भाइयो को आमन्त्रित किया। सेना के सरदारो के सामने जवार सिंह बोले—जिसको अपने माता-पिता प्रिय हैं वे घर लौट जाये। जिसको स्त्री प्रिय है वह भी लौट जाये और जिसको बच्चे प्रिय है वे भी लौट जाये, किन्तु जिसे डूग सिंह प्रिय है वही हमारे साथ हो। जिन्हें मृत्यु का भय नही, वे अपने साथ कफन का सामान लेकर हमारे साथ हो जाएं—

जिका भाला माता-पिता बोई घरा ने जाज्यो,
जिकी भाली स्त्री कोई घरा ने जाज्यो।
जिका भाला टाबर टोली बोई घरा ने जाओ,
जिको भालो डूग सिंघ बिजो मा के साथ,
टको लिज्या भीम को खापण लिज्यो साथ॥

जवार जी ने कहा कि मरने का ऐसा मौका फिर नहीं आयेगा। इस पर बैठी हुई फौजो मे से वीर जाट बोले कि हम फौजो से तो उद्देश्य प्राप्त *नही कर पाएगे क्योकि यहा अग्रेजो का राज्य है, अपने को तो कोई ढग* बनाना होगा। यथा :—

असीया मरवा मौका मरवा का फेरू न मिलेला।
बैठोडी फौजो मे मरदो बोले अनडी जाट॥
फौजों से नी पजपोना वो अगरेजी राज।
आपा तो मरदा कोई तीथ बणाओं॥

परिणामत. एक जाट को दूल्हा के रूप मे सजाया गया और अन्य बराती बन गये। वे आगरा की ओर चल पडे। आगरा मे एक मेडे को (मींढा) मार कर वे बैठ गये और कहा कि दूल्हा का सगा मामा मर गया है। अत. अब यहा इनका बारहवा कर के ही जायगे और अपने पडाव लाल किले (आगरा) के पास डाल दिये। आखिर मोहर्रम के दिन मौका देखकर जब आगरा मे ताजिये निकल रहे थे इन वीरो ने धावा बोल दिया। मार काट करते हुए अन्त मे ये लोग जेल तक पहुच गये। मारकाट के वर्णन की कतिपय पक्तिया यहा उधृत हैं —

कोईक जाणे ताजिया कोइक जान बरात।
ताजिया के आत्यू दोत्यू चलण दो तरवार॥

बड़े धड़ाधड़ गालियाँ तो वहे रक्तों का स्नान ।
जाँणी चाले जोधपुर की माछरिया वरनाट ।।
धड़मो धीँटी दूरी पड़े पड़ी पुकारे नाव ।
लेता देता जा बड़िया जेलखाना के माँय ।।

जेल में पहुच कर जवार ने डूंगजी को पुकारा और कहा कि जहाँ है, वहाँ से बोल। मैं तुम्हारी बेड़ी काट दूँ। पिंजरे म बन्द डूग जी इस प्रकार गरजे थे मानो शेर गरजा हो। गरजते हुए उन्होंने जवारजी से कहा—मेरी बेड़ी का क्या काटना वह तो कोई औरत भी काट सकती है। मेरे अतिरिक्त यहां नौ सौ बन्दी और भी हैं उनका क्या हाल होगा ? हे जवार पहिले इन बन्दियो की बेड़ियाँ काटो, भगवान भला करेंगे —

लेता देता जा बड़िया जलखाने के माय,
कटेईक वे तो बाल धाड़वी बेड़ी राल् काट ।
पिंजरा बोलयो जाण घड्र कियो नार,
म्हारी बेड़ी को काई काटणो लेवे लुगाई काट ।।
नौसो बदवा पड़िया जेल म वा को काई हवाल,
पहली आको काट जवारा भली करे भगवान ।।

डूगजी की आज्ञा पाकर जवार जी न पहले अन्य बन्दियों की बेड़ियाँ कटवाई। तत्पश्चात् डूग जी को भी मुक्त किया गया। आगरा में अग्रजो को मारत हुए डूंग जी झड़वासे की ओर चल पड़े और उन्होंने झड़वासे पहुचकर भैरोसिंह को मारा। इसके पश्चात् म बठोठ गए। बठोठ मे जब उनकी पत्नी उनकी स्वागतार्थ आई तो उन्होंने उनस कहा कि मेरा स्वागत करने से पूर्व तुम लोटिया जाट का स्वागत करो--

रानी महलो उतरी भर मोतियों थाल ।
मने काई बदावो बदावो लोटियो जाट ।।

डूगजी के आगरे क किल स इस प्रकार निकल भागने के कारण गोरी सरकार बौखला उठी। अग्रज अपनी फौज के साथ जोधपुर एव बीकानेर की सेना भी लेकर डूंगजी को पुन बन्दी बनाने के लिए निकल पड़े। जोधपुर की सेना के साथ विजय सिंह मेहता, कुशलराय सिंघवी और किलेदार अनाड़ सिंह भी थे। बीकानर राज्य के घड़सीसर गाँव के पास डूगजी जवारजी को इस सम्मिलित सना ने घर लिया। घरा तोड कर जवार जी बीकानेर महाराज रतन सिंह जी के पास चले गए। डूग जी घरा तोडकर भाग परन्तु

दुर्भाग्य स जैलसमर राज्य क गिरादडा नीव म जोधपुर की सना क द्वारा पकड गये। जोधपुर की सना की ओर स इन्हे यह विश्वास दिलाया गया कि उन्ह अग्रजो को नही सौंपा जाएगा। परन्तु जोधपुर ने अपने शब्दो का पालन नही किया और डूंगजी अग्रजो को सौंप दिये गये। बाद म जब जोधपुर महाराजा तखत सिहजी इस कृत्य के कारण हुई भर्त्सना न सुन सके तो उन्होने प्रयत्न करके अग्रजो से डूंगजी को माग लिया और अन्तिम समय तक जोधपुर में ही रक्खा।

उधर जवार जी बीकानर में थे ही। उनको अग्रेजो ने महाराज रत्नसिंह जी से मागा, किन्तु उन्होने देने से इन्कार कर दिया। जवार जी अन्तिम समय तक बीकानेर म ही रहे।

यदि उन वीरो को समय पर आर्थिक, नैतिक एव सैनिक सहायता प्रदेश के अन्य राज्यो स मिल जाती तो वे वीर अपने सकल्प को अवश्य पूण कर पाते। भारत भूमि का दुर्भाग्य ही था कि अग्रेजो की कूटनीति के कारण वे अपने सकल्प हृदय म लिए हुए ही स्वग सिधार गए। डूगजी का सकल्प था—

मार फिरगी ने काढू कलकत्ता कै बार।

भले ही उनका पवित्र उद्देश्य, महान सकल्प एव दृढ़ निश्चय पूरा न हो सका। किन्तु क्या यह सत्य नही है कि डूंगजी जैसे वीरो ने ही स्वतत्रता सग्राम की जो नीव रखी उसी पर १५ अगस्त १९४७ को भारतीय स्वतत्रता का भवन खडा हुआ। वे वीर सनानी उस नीव के पत्थर थे। उन्होन प्राणो की आहुति देकर एक आदर्श की स्थापना की थी। उस आदश का अनुकरण विभिन्न वीरो न किया और आज भी आजादी के रक्षाथ कर रहे है। वे सेनानी ऐसे प्रकाश स्तम्भ हैं जो युगो तक आने वाली पीढियो को प्रकाश देते रहग। □

राजस्थान के अल्पज्ञात स्वतन्त्रता सेनानी

स्वतन्त्रता-सग्राम मे भाग लेने वालो में अनेक वीरों के नाम चलते हैं उनके सम्बन्ध मे ज्ञात सामग्री का अपेक्षतया अभाव है। यहाँ कतिपय वैसे ही वीरो के सम्बन्ध मे किंचित् चर्चा की जाती है।

१. रतन सिंह जी सोढ़ा

१८४३ म सोढो के राज्य उमरकोट पर अग्रजो ने अधिकार कर लिया। उस समय उमरकोट के राणा के छोटे भाई रतन सिंह जी ने अग्रजो से युद्ध किया। उनके साथ अनेक क्रांतिकारी भी आ मिले थे। राणा अंग्रेजो की छावनियो पर अचानक हमला कर देत थे। इस प्रकार वे अंग्रेजो से निरन्तर युद्ध करते रहे। १८५७ में आउवा ठाकुर कुशाल सिंह से मिलकर वे अंग्रेजो के विरुद्ध योजनाए बनाने लगे। किन्तु इसी समय इनके कुछ साथी अंग्रेजों से मिल गए। तभी धोख से रतन सिंह को कैद कर लिया गया। अंग्रेजी सरकार ने उन्हे अंग्रजो की हत्या करने के अपराध मे मृत्यु दण्ड दिया। उनकी स्मृति म एक वियोग-गीत प्रचलित है। इस गीत मे एक बार उनमे अमराण (उमरकोट) लौटने का आग्रह किया जा रहा है। यथा—

म्हारा रतन राणा एकर तो अमराणे घोडो फेर !

x x x

घर घरिये म घरट मडाय हो जी हो !
गेहूँडा पीसीज हो जी आट इयो पीसीजे राणा राव रो !

x x x

अमराणे म हो घार अधार हो जी हो !
बिजळा नै लागे रे मेहल मालिया हो।
म्हारा रतन राणा एकर तो अमराणे पाछो आव।[1]

---

१. राजस्थानी लोक गीत—म० डा० दाधीच, पृ० १६४

इस क्रांति में जनता का पूर्ण सहयोग था। जन-मानस के यह उद्‌गार उसी का प्रमाण है। उस वीर से लोक-गायक कह रहा है कि आप एक बार पुनः उमरकोट लौटिए। आपकी सेना के लिए गेहूं का आटा घर-घर में चक्की चला कर एकत्र किया जा रहा है। जन-मानस इस क्रांति में यदि सक्रिय योगदान नहीं कर रहा होता तो घर-घर में चक्की चलाने की बात कैसे सम्भव होती। यही नहीं, आगे वर्णित है कि उनके कैद होने से उमरकोट में घोर अंधकार छा गया है। उमरकोट के महल-मालिये (भवन) तक रोते हुए प्रतीत होते हैं। कितना प्रेम, कितनी श्रद्धा थी स्वतंत्रता के उन दीवानों के प्रति।

२. नाथू सिंह देवड़ा

भटाण के जागीरदार श्री नाथू सिंह देवड़ा ने पराधीनता का जीवन जीने की अपेक्षा स्वाधीनता की मृत्यु को ही श्रेयस्कर समझा था। जब अंग्रेजों ने देवड़ा जी को कर भरने के लिए विवश करने की चेष्टा की तो उन्होंने विदेशी आततायियों को कर देने के स्थान पर चुनौती दी। युद्ध हुआ। युद्ध में देवड़ा जी वीरगति को प्राप्त हुए किन्तु पराधीनता का जीवन-यापन करना उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

उनकी स्मृति में निम्नांकित लोक गीत प्रचलित है।

खिरणी भरु तो जरणी परी लाजे रे, नाथू सिंह देवड़ा
खिरणी भरु तो जरणी लाजे
पाचा ने पच्चीस थें तो गोरा परा मार्‌या
म्हारा नाथू सिंह देवड़ा रे भटाणे रा देवड़ा
भाई के लड़ै रे थारा भतीजा ई लड़ै रे, म्हारा नाथू सिंह देवड़ा
थारे रे नाम सूं मेमड़ी थरके रे) म्हारा भटाणे रा देवड़ा
मेमड़ी थरके नै साहबड़ा परा धरके, म्हारा नाथू सिंह देवड़ा
भवर-भवर पट्टा नै बाकडली मूछा रो, म्हारो नाथू सिंह देवड़ो
छावणी लूटी थ तो गोरा सू झगड़िया, म्हारा भटाणे रा दवड़ा।[2]

गीत में नाथू सिंह जी देवड़ा के प्रण-खिरणी भरने से मेरी जननी लज्जित होती है—का उल्लेख किया गया है। उनके द्वारा गोरों को मारने

२. राजस्थानी लोकगीत—सं० रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत, पृ० २०३

तथा गोरों की मेमो पर जो आतंक था उसका भी उल्लेख किया गया है। साथ ही उनके भव्य रूप का चित्रण भी है।

अंग्रेजो ने राज्य स्थापित करने के पश्चात् सब राजा-महाराजाओं तथा जागीरदारों से खिराज (कर) वसूल करना आरंभ कर दिया था। उसके विरुद्ध आवाज उठाई गई थी। बलप्रयोग द्वारा उसे दबा दिया गया था। किन्तु वही आवाज सौ-सौ कंठों से दुगने वेग से लोक गीतो मे गूंज उठी थी।

३. राजू रावत

बरार के राव जो राजू नामक व्यक्ति ने भी अंग्रेजो को कर देने के विरोध मे क्रांति की थी। वह अजमेर जिले में बरार गांव का निवासी था। टाटगढ़ में अंग्रेजो ने अपनी तहसील बनाई थी। जब राजू के खेत का कूता करने एक बनिया आया तो राजू ने उसे पीटकर भगा दिया। लोक-कवि के शब्दों में—

राजूड़ा ने रीस आई, गेडी री ठरकाई ओ

x x x

टाटगढ़ म जायने रपोट बोली ओ, गाल लेडके
चार सो चपरासी लायो, सो'ला लायो फरगी।[3]

राजू के मारने पर बनिये ने अपने गौरांग प्रभुओं को रिपोर्ट की। वहाँ से वह चार चपरासी और सोलह अंग्रेजो को लेकर आया। राजू को पकड़ कर टाटगढ़ मे बंदी बना दिया गया। कारागृह मे बैठा राजू पिपलाज की देवी का ध्यान करता है। वह देवी को मनौती मनाता है और कहता है कि हे देवी। यदि तुम मेरा कार्य सम्पन्न कर दो तो मैं तुम्हे पूजा चढ़ाऊंगा। नाथ जी को नारियल और देवी को बकरा। यथा—

बैठो-बैठो राजू पिपलाज ने सवरे ओ !
म्हारा ऊपर आवे दवी दोवड चाढ़ू चाढ़ू ओ !
तितर थारा मूंडा आगे आप माथा मलू ओ !
नाथ ने नारेल चाढू, माता जी ने बाकरियो !

---

३ राजस्थान के त्योहार गीत—(अप्रकाशित) ले० ग्रामीण परिशिष्ठ गीत सख्या २३

कहा जाता है कि उसकी प्रार्थना देवी ने सुन ली। उसकी बेड़ियाँ टूट गई और ताले खुल गए। राजू बाहर निकल आया। बाहर आकर उसने—

बगला ऊपरे आय राजू चार चपरासी मारिया
सो'ला मारिया फरंगी, ना श्रो सो'ला मार्‌या फरंगी।

,जेल से मुक्त होकर उसने चार चपरासियों को मारा और सोलह अंग्रेजों को। बाद में वह फिर पकड़ा गया और उसे मृत्यु दंड दिया गया।

४. रणजीत सिंह जी, भरतपुर महाराज

भरतपुर के महाराजा रणजीत सिंह ने जसवन्तराज होल्कर को शरण दी थी। अंग्रेजों ने उन्हें होल्कर को लौटाने को कहा। शरणागत की रक्षा भारतीय परम्परा रही है और इस परम्परा का वे कैसे उल्लघन करते। इसी बात का लेकर अंग्रेजों एवं भरतपुर महाराजा के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध की स्मृति में आज तक निम्नांकित लोक गीत गाया जाता है। यथा—

आछो गोरा हट जा राज भरतपुर को रे
भरतपुर गढ़ बाको किलो रे बाको, गोरा हट जा
यू मत जाणी लड़े रे बेटो जाट को
ओ कुंवर लड़े रे राजा दसरथ को, गोरा हट जा
गढ़ रे ऊभी रे म्हारा बावन भेरू
कागरा ऊभी रे चौसठ जोगणिया, गोरा हट जा
चक्कर चलावेला म्हारा बावन भेरू
खप्पर भरेली म्हारी चौसठ जोगणिया, गोरा हट जा।[4]

गोरों के प्रति जो घृणा लोक-मानस में थी उसका परिचय यहां मिलता है। जिन लोगों ने अंग्रेजों का विरोध किया उन्हें लोक गायक ने अमर कर दिया है।

५ चैन सिंह जी

चैनसिंह नर सिंह गढ़ के राज कुमार थे। आपने अंग्रेजों की सीहोर छावनी पर धावा बोल दिया था। आपको युद्ध में जाने से रोकने की चेष्टा पिता ने की, भाइयों ने की, पत्नी ने की। सभी का यही कहना था कि अभी लड़ने की आयु नहीं है। किन्तु यह वीर युद्ध भूमि में गया ही। वे

४. राजस्थानी लोकगीत—सं० रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत, पृ० १८७

युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुए। लोक-गायक ने इनका कीर्ति-गान कर सदैव के लिए अमर कर दिया है—

सेजा संवारता गोरी जी बोल्या
नीं ओ आलीजा थारी लड़वा रो वेस

x x x

सीस कटायो मान वंधायो
मुख पै उड़े रे गुलाल
सीवर मे डेरा डाल्या
धड़ मे कर्‌यो रे जवाब।[5]

हे चैनसिंह जी आपने युद्ध भूमि में सिर कटवा लिया। आपके मुंह पर यश की, कीर्ति का गुलाल उड़ रहा है। सिर कटने पर आपने धड़ से ही युद्ध किया।

यहां इतिहास द्वारा उपेक्षित कुछ ऐतिहासिक पात्रों का परिचय देने का प्रयास किया गया है। असंभव नहीं कि इस परम्परा में और भी अनेक वीर हुए हों। अब भी आवश्यकता है कि यथाविधि अज्ञात अथवा अल्पज्ञात राष्ट्रीय वीरों के सम्बन्ध में बिखरी सामग्री का संकलन किया जाये जिससे भावी पीढ़ी उनके कार्यों का योग्य मूल्यांकन कर सके। □

राजस्थानी भीख मांगने वाली जातियां और लोक गीत

राजस्थान की भीख मागने वाली जातियाँ अधिकतर घुमक्कड़ (Nomedic) हैं। ये कभी एक स्थान पर घर बसा कर नहीं रहती हैं। अपने व्यावसायिक दृष्टिकोण से भी ये एक स्थान पर नहीं रह सकती इनम से कुछ लोग ऐसे है, जो घर बसाकर रहते भी हैं। घर बसाकर रहने वाली जातियो म प्रमुख हैं--ढाढी, नाथ, मदारी, नट, ढोली आदि। घर बसाकर रहन वाले लोग भीख मांगन के साथ सहायक-व्यवसाय के रूप म कृषि भी करते हैं। फसल बोने व काटने के समय ये अपने घर पर रहते हैं। शेष समय घर छोडकर भीख मागत हुए एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमते रहते हैं।

भ्रमणशील भीख मांगने वाली जातियों में प्रमुख हैं--सांसी, कंजर, भोपा कालबेलिया आदि। इनम भी कुछ ऐस लोग हैं, जो घर बना कर भी रहते हैं। जो लोग घुमक्कड हैं वे परिवार और पालतू पशुओ क साथ एक स्थान स दूसरे स्थान पर जाते हैं। इनके पास साधारणत. बैल या भैंसा होता है, जिस पर ये अपन बिस्तर, खाने-पकाने का सामान लिये चलते हैं। कालबन्यिा जाति क लोग गध का उपयोग करते हैं। इन पशुओ पर अपना सामान रखने के पश्चात ये अपने पालतू पक्षी-जैस मुर्गे, बटेर, तीतर आदि को भी रख लेत हैं। या तो ये इनके पांव बाघ कर रखते हैं। या पिंजरे म।

इन का दैनिक कार्यक्रम प्रात लगभग आठ बजे से आरम्भ हो जाता है। ये लोग घरो म जाकर भीख मागते हैं। भीख म उपलब्ध सामग्री स ही ये लोग ब्यालू करत हैं। दस ग्यारह बज तक ये भीख माग कर अपने डेरे पर पहुच जात हैं। वहा ये भीख म प्राप्त रोटी को खा पीकर या तो सो रहते हैं या जगल म शिकार की खोज म निकल पडत हैं। इनके पास अच्छे शिकारी कुत्त होते हैं जिनकी सहायता से पशु-पक्षियो का आखेट करते हैं। पुरुष आखट करते है और स्त्रिया लकडी कण्डे आदि एकत्र करती हैं। तीन-चार बज स्त्रिया भीख मे प्राप्त अनाज को पीसकर तैयार करती हैं। इधर

आखेट से पुरुष लौट आते हैं। तब आखेट में प्राप्त पशु-पक्षियों का मास एव आटे की रोटिया तैयार की जाती हैं। अन्त मे भोजन करके येलोग सो रहते हैं।

इनके डेरा लगाने की भी अपनी एक विशेष कला होती है। मौसम के अनुकूल ये अपने डेरे का स्थान निर्धारित करते हैं। वर्षा ऋतु में ये लोग अपने डेरे के लिए किसी चट्टान को चुनते हैं। ताकि उसके ऊपर पानी नही टिके। ये लोग अपने साथ सरकण्डो की बनी सिरकियाँ रखते हैं, जिन्हें तान कर झोपडी तैयार कर लेते हैं। बरसात मे भी ये वर्षा से भीगी काली रात्रि को सुख-चैन से व्यतीत करते हैं। शरद्-ऋतु में किसी गाँव के पास झाडियों वाली भूमि को अपने डेरे के लिए चुनते हैं। उन्हीं झाड़ियो से ये लोग लकडियाँ चुन लेते हैं और शरद्-ऋतु की ठिठुरती रात को लकड़ियों के जलते अलाव के सम्मुख बैठकर व्यतीत करते हैं। ग्रीष्म ऋतु मे ये लोग पेड़ो की शीतल छाया को अपना आश्रय स्थल बनाते हैं।

भीख मागने के प्रत्येक जाति के अपने-अपने तरीके हैं। कालबेलिया जाति के लोग बीन बजाकर साप दिखा कर भीख मागते हैं। इसके अतिरिक्त ये गीत गाकर भी भीख मागते हैं। ये लोग साप को पिटारी म बद रखते हैं। घरो म जाकर 'माई, नाग दवता के दर्शन करलो !' की पुकार लगाते हैं। बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए ही ये साँप की पिटारी को खोल कर बीन बजाना आरम्भ कर देते हैं। साप बीन की ध्वनि पर फन फैलाकर झूमता है। धार्मिक भावना के कारण औरते, बच्चे व पुरुषों का मजमा लग जाता है और उसके पश्चात् इनको भीख में रोटी, अनाज, आटा आदि सामग्री मिल जाती है।

कालबेलिया जाति की स्त्रियाँ गीत गाकर भीख मागती हैं। फाल्गुन मास मे स्त्रियाँ व पुरुषों के समूह बन जात हैं और चग पर 'फाग' गाकर भीख मांगते हैं। यहा 'फाग' गीत की दो पक्तिया उधृत हैं—

"पोर तो परणायो छैला अब किकर भातरियो।
पोर के सियाले म्हारे भूरी भैंस मिलती ओ।"

गीत मे किसी छैला स उसकी प्रेयसी प्रश्न करती है कि पोर (गत वर्ष) तुम्हारा विवाह हुआ और तुम इतने थक क्यो गये? उत्तर मे कहा गया है कि गतवर्ष मरे घर मे भूरी भैंस दूध देती थी। इस वर्ष दूध नहीं

देती। इसीलिए मैं थक गया हू। इनके श्रगारिक गीतो मे घोर अश्लीलता होती है।

कालबलिया जाति के लोग भीख मागने के अतिरिक्त चक्की (घट्टी) बेचने का व्यवसाय भी करते हैं। किन्तु इनका मुख्य व्यवसाय भीख मांगना ही है। ये अपने को नाथ कहने मे गौरव अनुभव करते हैं। अश्लील गीतों का इस प्रकार सामाजिक रूप से गाने पर कोई रोक नही है।

'भोपे, दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो केवल भेरूजी या जीण माता आदि के होत है। ये अपने इष्ट देव भेरू जी का पूजन करते हैं और जब गावो में भीख मागने जाते हैं तो भेरू जी के गीत गाते हैं। शेखावाटी मे सीकर' के पास हर्ष का भेरू प्रसिद्ध है। यही पास के पर्वत पर जीण माता का मन्दिर है। मान्यता है कि दोनो भाई-बहिन थे। इनसे जीवन से सम्बन्धित निम्नांकित गीत भोपे गाते हैं-—

'हरसा वीर म्हारा रे,
दर तो घाधू मे जलम्या दा जणा। हरसा०
हरसो वडा अर छोटी जीण, जामण रा रे जाया।
अपणी माता के रे जलम्या दो जणा। हरसा० ।।''

जीण कहती है कि हे हर्ष तू मेरा भाई है। 'घाधू' मे हम दोनो का जन्म हुआ। हर्ष वडा और जीण उसकी छोटी बहिन, दोनों हो एक ही मा की सतान हैं। इस गीत को हर्ष के भेरू तथा जीण माता दोनो के भोपे गाकर भीख मागत है। भेरू की पूजा सम्पूर्ण राजस्थान मे प्रचलित है। भैरव सम्प्रदाय के लाग ही भोप हैं। ये अपने-अपने स्थानीय गीत गाकर भीख मागते है।

'भोपे, की एक और जाति होती है। उदार उल्लिखित भोपे जरूरी नही कि जाति से भी भोपे हो। वे किसी भी जाति के भी हो सकते हैं, परन्तु वे माता या भेरू की पूजा करने के कारण 'भोपे, कहलाते हैं। दूसरे जो 'भोपा, जाति मे हात है एव देवजी की पड, पाबू जी की पड आदि दिखात हैं तथा एक तारे पर गीत गाते है। भोपा के साथ एक भोपी, अर्थात् एक स्त्री रहती है जो भोपे की गाई हुई एक कडी के साथ दूसरी कडी गाकर सहायता करती है। भोपा सारंगी (एक तारा) बजाता हुआ प्रथम पक्ति बालता है और दूसरी साथ की स्त्री। प्रात काल ये पाबू जी

तेजाजी डूगजी जवार जी आदि लोक देवताओ के अथवा वीरो के गीत गाकर भीख मागते है और रात्रि को पड दिखाते हैं। इनके पास एक वस्त्र पर देवता के जीवन से सम्बन्धित चित्रावली बनी होती है। यह चित्रपट दो बासों के सहारे तान दिया जाता है और उसके सामने भोपा और भोपी गाने के लिए खड़ हो जाते हैं। भोपे के हाथ में सारगी होती है और भोपी के हाथ में प्रकाश हेतु दीप अथवा मशाल। कहते है कि ये पड पवाड तथा लोक गाथाए इन्ही के पूर्वजो द्वारा रचित हैं। इन लोगो ने इनकी रचना की हो अथवा नहीं किन्तु इतना सत्य है कि इन्होंने विभिन्न वीरो एव देवताओ के जीवन सम्बन्धित गीतों का धरोहर के रूप में सभाल कर रखा है। यदि ये भोपे नही होते तो डूगजी जवार जी को केवल लुटेरा और डाकू ही समझा जाता।

नट जाति के लोग रस्से पर चलकर और चारपाई को जिह्वा पर उठाकर विभिन्न करतब दिखाते हैं। इस प्रकार के अद्भुत खेल दिखाकर ये भीख प्राप्त करते हैं। मदारी रीछ बन्दर आदि के करतब दिखा कर भीख प्राप्त करते हैं।

ढ़ाली एव ढाढ़ी लोग गाकर व कठपुतली का नाच दिखा कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

साँसी कजर जातिया के लोग चोरी हत्या आदि करने के साथ ही भीख भी मागते हैं। ये दोनो अपराधी जातियाँ (Criminal Tribes) हैं। ये घर बनाकर भी रहते हैं। कजर जाति के लोग गीत गाकर भीख मागते हैं और कजर स्त्रिया नाच दिखा कर। यहा केवल उन जातियो का उल्लेख किया गया है जिनके माध्यम से लोक गीत एव लोक कलाए जीवित रह सकी हैं। यहाँ प्रसगवश कला के उन पुजारियो के जीवन का रहन के ढग का भी किंचित परिचय दिया गया है। ये जातियो भीख मांगने के साथ साथ लोक रंजन भी करती हैं। ये जीवन में अनवरत सघर्ष करते हुए लोक कला के महान साधक किसी सम्मान को अपना नहीं समझते। गावो में मनोरजन के साधनों का अभाव है ये ही लोग मनोरजन के साधन हैं और समय-समय पर लोगो के मनोरजन के लिए अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। राजस्थान की ग्रामीण जनता ने इन कलाकारो की कला को जीवित रखा है। इन का यह कार्य प्रशसनीय एव स्तुत्य है।

इन जातियो के द्वारा लोक गीत केवल व्यवसायिक दृष्टिकोण से ही नही गाये जाते है। इनके अतिरिक्त सभी स्त्री एव पुरुष विभिन्न सस्कारो, उत्सवो, पर्वो, त्योहारो आदि के अवसर पर भी गीत गाते है। इन जातियो के यहां लोक गीत, लोक गाथाएँ तथा लोक कलाए व्यवसायिक रूप मे परम्परा से चली आ रही है। इन्हे हम लोक-काव्य कार की अथवा लोक कवि की उपाधि दें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। उपरिवर्णित राजस्थान की भीख मागने वाली जातियो का न केवल लोक-गीतो से बल्कि लोक-कलाओं से भी घनिष्ट सम्बन्ध है। □

राजस्थानी–साखियाँ

राजस्थानी लोक-साहित्य के विविध-रूप हमें देखने को मिलते हैं। राजस्थानी लोक-साहित्य का भंडार विविधता पूर्ण के साथ ही अत्यंत समृद्ध भी है। राजस्थानी लोक-काव्य के अन्तर्गत राजस्थानी दूहे, सोरठे तथा साखियाँ भी आती हैं। दूहा, साखी अथवा सोरठा में मात्रा संबंधी अथवा कहिए की पिंगल शास्त्र के आधार पर कोई अन्तर कर पाना कठिन है। ये तीनों शब्द लोक-काव्य में एक दूसरे के पर्यायवाची बन गये हैं। लोक-काव्यकार का पिंगल शास्त्र का ज्ञान प्रायः नहीं होता, अतः इन तीनों में पिंगल के आधार पर कोई भेद बता सकना संभव नहीं है। लोक-काव्य में दो पंक्तियों वाले गेय पद जो चार चरणों में विभाजित होते हैं, उन्हें ही इन तीनों शब्दों से अभिहित किया जाता रहा है। यहाँ हम इन पर पिंगल-शास्त्र के आधार पर विचार नहीं करते हुए केवल एक छंद के रूप में स्वीकार करेंगे। इनमें चार चरण होते हैं। दूसरे और चौथे चरण में (अंतिम भाग लय युक्त होता है) तुक मिलती है। ये गेय होते हैं। राजस्थान में दोहा छंद के लिए निम्नांकित उक्ति प्रसिद्ध है—

> सारठियो दूहो भलो, भली मरवण री बात।
> जोवन छाई धण भली, तारा छाई रात॥

'कुम्हार' राजस्थान की एक विशेष जाति है। यह हिन्दू धर्म को मानने वाली जाति है और मिट्टी के बर्तन बनाना इनका प्रमुख उद्योग है। इनके यहाँ विवाह एवं गौने के अवसर पर रात्रि के समय नृत्य एवं गायन का आयोजन किया जाता है। ढोल एवं थाली या झालर (कांसे की बनी छोटी थाली) बजती रहती है। एक पुरुष अपने पैरों में घुंघरू बांध लेता है दूसरा भी अपने पैरों में घुंघरू बांधता है और नारी वेष में सुसज्जित होकर नृत्य-भूमि में आ जाते हैं। ढोल एवं थाली की ध्वनि तथा नूपुरों की रुन-झुन से नृत्य आरंभ होता है। नृत्य के बीच में साज बजता है। नृत्य बंद होने के साथ साज भी बंद होता है और एक व्यक्ति दूसरे की ओर उन्मुख

होकर एक साखी या दूहा कहता है। जैसे ही वह कह चुकता है साज के साथ पुन नृत्यारभ होता है। कुछ क्षणों के पश्चात नृत्य फिर स्थगित किया जाता है। अब दूसरा व्यक्ति पहले की ओर उन्मुख होकर पहले के प्रत्युत्तर में दोहा कहता है। इस प्रकार क नृत्य में भाग लेने वाले लोगो के पास दोहो, सोरठा अथवा साखियो का अटूट भडार होता है। ये लोग कई रातो तक निरन्तर नई-नई साखिया बोलते चले जाते हैं। यह इनकी विशषता होती है। एक का उत्तर दूसरा देता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि नृत्य करने वालो के अतिरिक्त बाहर दर्शको के रूप म उपस्थित लोगो में स भी कोई दो व्यक्ति साखिया क इस प्रश्नोत्तर क्रम को अपना लते हैं। यह क्रम अविरल एव अबाध-गति स चलता रहता है। इसम पुनरावृत्ति का दोष माना जाता है। अत जो व्यक्ति पुनरावृत्ति करता है अथवा नई साखी करने म असमर्थ रहता है उसको पराजित मान लिया जाता है। विजेता व्यक्ति उसको साखी म ही कहता है कि तुम अब साखी कहना छोड दो। साथ ही उसको अपमानित करने के लिए अश्लील-शब्दो का प्रयोग भी साखी म करता है। पराजित व्यक्ति को वहाँ से भागना पडता है।

साखियो के इस सामान्य परिचय के पश्चात् कुछ साखिया का विवेचन करना असगत न होगा। प्रतीकात्मकता इन साखियो की प्रमुख विशषता है। यौन-अगा तथा यौन सबधी बातों के लिए इनम प्रतीकात्मक शैली अपनाई गई है। प्रमी युगल के लिए 'दो कबूतर' का प्रयोग साखियो मे दृष्टव्य है, यथा—

जयपुर का बाजार म, दो कबूतर जाय।
सीटी दे उडावसी, म्हारो जोडो बिछड जाय ॥ (सकलित)

इसी तरह का एक दोहा दखिए—

दिल्ली के बाजार म, चार कबूतर जाय।
सीटी दे बुलाय लूँ, जोडा बिछड जाय ॥'[1]

कबूतर का दाम्पत्य प्रम अभिजात काव्य मे प्रसिद्ध रहा है। लोक-गायक ने कबूतर को प्रमी-युगल का प्रतीक चुना है—वास्तव मे यहाँ उसकी कल्पना सराहनीय है।

यौवनागमन से पूव नायिका अपरिपक्व फल के प्रतीक द्वारा नायक को

१ धूलि धूसरित मणियाँ —लेखिका सीता बी ए आदि, पृ ३७३

उसका उपभोग करने के लिए निषेध करती है। वह कहती है कि इसे चार दिन और पकन दो। यदि अपरिपक्व-अवस्था म तोड लिया तो मेरा यौवन व्यर्थ चला जायगा। अस्तु—

'कच्ची करी कच्चपची, पाकण दे दिन चार।
काची के मत तोडजो म्हारो जोबन अकारथ जाय॥'[1]

जहाँ मालवी दोहे म 'कच्ची कैरी' को तोडने का निषेध किया जा रहा है वहा राजस्थानी साखी में कच्चे-पक्के बर' तोडने को कहा जा रहा है। यहाँ नायिका-नायक स कहती है कि पवत पर पर्वत है जिस पर बेर का पेड खडा है। अभी तुम इन बेरो के कच्च-पक्क बर तोडलो प्रातः गणगौर का त्योहार है। यहाँ नायिका कच्चे-पक्के' शब्द में अपनी मुग्धावस्था का परिचय दे रही है। वह अपन यौवन की स्थिति स्पष्ट करती हुए कहती है कि वह कच्चा भी है और पक्का भी। 'कच्चा-पक्का' शब्द का प्रयोग कितने सुन्दर ढग स हुआ है। वह कहती है कि यह जिस स्थिति में है उसी मे इसका उपभोग (तोडलो) कर लो। यथा—

डूगर ऊपर डूगरो जिण पर ऊबो बड बार।
काचा पाका तोडले, लडके है गणगौर॥ (सकलित)

एक राजस्थानी लोक-गीत म प्रेयसी अपन प्रियतम को कहती है कि मुझे मत छेडो अभी तो मैं नीम पर लगन वाली कच्ची निवारी हूँ। 'काची नीम नीम्बोली' यहाँ अपरिपक्व यौवन का प्रतीक है—

फागण री रुत आई, आई सखि हाली ए!
छेड मती बालम, काची नीम नीम्बोली रे![2]

इसके विपरीत कही कही इन साखियो में मूर्ख प्रेमी की हसी भी उडाई जाती है। चार खुणा की बावडी नरी थबोला खाय।" यह यौवन के परिपक्व होन का प्रतीक है। इसका अर्थ है कि चार कोनो वाली बावडी पूरी भरी है और उसम थपेड़ लग रहे हैं। वहा हाथी घोड डूब गये परन्तु

१ मालवी लोकगीतों का विवेचनात्मक अध्ययन—डा० चिंतामणि उपाध्याय, पृ २८६

२ राजस्थान के त्योहार गीत (लखक की पुस्तक) परिशिष्ठ मे होली के गीतो म स उद्धृत

'पनिहारिनें' खाली लौट रही हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति रति-क्रीडा में चतुर थे वे इस यौवन-वापी में डूब गये, किन्तु जो अनजान थे वे यहाँ से खाली हाथ लौट रहे हैं। साखी इस प्रकार है--

"चार खूण्यां की बावडी, भरी पचाला खाय।
हाथी घोडा डूब ग्या, पणिहारिया रोती जाय॥" (सङ्कलित)

डा० चिन्तामणि उपाध्याय जी ने भी इसी प्रकार की एक मालवी साखी उद्धृत की है--

चार खुण्या की बावडी भरी अकोला खाय।
हाथी जैसा डूब मर, मूरख गाता जाय॥[1]

बिहारी के एक दोहे में भी उक्त दोनों साखियों से भाव-साम्य है--

तन्त्री नाद कवित्त रस सरस राग रति रंग।
अनबूडे बूडे, तिरे जे बूडे सब अंग॥

असंभव नहीं कि कबीर को इसी प्रकार की किसी साखी से निम्नांकित साखी के लिए भाव मिला हो--

आकास मुख औंधा कुवा, पातालै पनिहारी।
ताका पाणी को हंसा पीवै, बिरला आदि विचारी॥

कबीर की साखी छंद के रूप में इन्हीं लोक साखियों से प्राप्त हुई होगी। यह भी संभव है कि लोक साखी का 'बावडी'-- आकास मुख औंधा' कुवा, 'रोती जाने वाली पनिहारी'-- पातालै पनिहारी' बन गई हो और हाथी घोडे डूब जाना -- को हंसा पीवै बिरला आदि विचारी' बन गये हो।

अपरिपक्व - यौवन के संबंध में उपर्युक्त साखियों में नायिका उसके उपभोग का निषेध करती है। महाकवि बिहारी ने भी तो निम्नांकित दोहा महाराज जयसिंह जी को लिख भेजा था--

नहीं पराग नहीं मधुर मधु नहीं विकास अहि काल।
अलि कली ही सों बध्यो, आगे कौन हवाल॥

आश्चर्य नहीं की बिहारी को भी इस दोहे का भाव कहीं इसी प्रकार की किसी साखी से मिला हो। साहित्य के लोक तात्विक अध्ययन की

---

१ मालवी लोकगाथा का विवेचनात्मक अध्ययन--पृ० २८६

प्रमाण सा० श्री राजेन्द्र जी स्थापित कर चुके हैं। यदि इन साखियों के भाषा का साहित्यिक द्वारा सब साखियों पर प्रभाव देखने को मिले या देखने का प्रयत्न किया जाय तो अप्रासंगिक नहीं माना जा सकता।

एक अन्य साखी में नायिका अपने प्रियतम से अनुरोध करती है कि वह जाल (काकड़) में खेती नहीं बाय। क्योंकि जब वह विदेश चला जायेगा तो खेत को चिड़ियाँ खायेगी--

मूथान वरजू सायवा, काकड खेती मत वाय।

थे तो जावोला परदेश में, खत छुडक्ला खाय ।। (सकलित)

यहा काकड खेती बाना' प्रतीक है युवा पत्नी को अकेली छोडने का और खेत 'छुडक्ला खाय' प्रतीक है यौवन के व्यर्थ नष्ट होने का।

जिन प्रतीकों का चयन लोक-गायक ने किया है वे लोक-गायक के अपने परिवेश से चुने गये हैं। इन प्रतीकों के प्रयोग से साखियों की संप्रेषणीयता बलवती हो गई है। इन साखियों में कबीर की उलटबासियों का स्वाद है, बिहारी सा अर्थ गाम्भीर्य है और ये उन्हीं के समान हृदय को छू लेने वाले हैं।

इन साखियों में विषय की विविधता मिलती है। एक साखी में अवैध संतान के संबंध में कितनी सुन्दर उपमान योजना लोकगायक ने की है? तेल जलता है, बत्ती जलती है, परन्तु नाम दीपक का होता है। वैसे ही नारी पुत्र को जन्म देती है किन्तु नाम उसके पति (पिया) का ही होता है, यथा--

तल बल ज्यू बाट बले, नाम दीया को होय।

गोरी तो बेटा यू जणे, नाम पिया को होय ।। (सकलित)

इसी प्रकार का दोहा ब्रज प्रदेश का भी है--

तेल जले, बाती जले, नाम दिया दीया का होय।

लौंडा खेले यार का, नाम पिया का होय।

एक साखी में नायिका का अपने यौवन के व्यतीत होने पर खेद हो रहा है। वह कहती है कि हे यौवन! मुझे यदि ज्ञान होता कि तू यो चला जायेगा तो मैं तेरे आग बाड लगाती। साथ ही तुझे महंगा करके बेचती कस्तूरी के भाव में। यथा--

जोबनिया जातो जाणती, आडी करती बाड ।
मूंगो कर-कर बचती, थान कस्तूरी के भाव ॥ (सकलित)

नायिका कहती है कि गाडी को 'पांखले'[1] और बैलो को 'झूल'[2] शोभा देती है । मैं इस नपुसक के पल्ले पड गई परिणाम स्वरूप न कभी फल ही लगा और न फूल ही । यथा--

गाडी न सोवे पाँखला, बलदाँ न सोवे झूल ।
इ राडिया के पाने पडगी, म्हारे कदी न लागो फल फूल (सकलित)

यहाँ फल-फूल प्रतीक है सतान का । अब इसके उत्तर म पुरुष का कथन देखिए --

गाडी ने सोवे पाँखला, बलदाँ न सोवे झूल ।
मरद बापडो काई करे, थारो उलटो फिरग्यो फूल ॥ (वही)

पहली पक्ति की ज्यो की त्यो पुनरावृत्ति है । दूसरी मे कहा गया है कि (तुम्हारे फल-फूल नही लगा तो इसम) बचारा मर्द क्या करे तुम्हारा फूल (गर्भाशय) ही उलटा हो गया ।

वियोग-जन्म वेदना का वणन भी साखियो म देखने को मिलता है । एक साखी म नायिका कहती है कि मैं चाँदनी म पलग बिछा कर सो रही थी । जब भी जागती हू तभी अपने को अकेली पाती हू । अत क्यो न कटारी खाकर मर जाऊ ? चन्द्रमा की शीतल चाँदनी और नायिका है वियोगिनी फिर आत्महत्या करने का विचार अस्वभाविक नही । यथा--

चदा थारे चाँदण सूती पलग बिछाय ।
जद जागू जद अकेली, मरू कटारी खाय ॥ (सकलित)

युवती नायिका अपनी वियोग-वेदना को उदाहरण द्वारा पुष्ट करती है--

तीतर लोटे धूल मे, घोडी लोटे ठाण ।
गोरी लोटे सेज म, भर जोबन के पाण ॥ (सकलित)

तीतर धूल म लोटता है और घोडी अपने ठाण' (बधने का स्थान

---

१ लकडी के तीन तख्ते जो गाडी के ऊपर लगाये जाते हैं, जिससे उसमे रखा सामान नही गिरने पावे, पाँखले कहते हैं ।

२ एक विशेष प्रकार की कसीदाकारी मे युक्त रगीन वस्त्र जो बैलो को सौंदय- वृद्धि के लिए ओढाया जाता है, को झूल कहते हैं ।

जहाँ इसे घास डाली जाती है) मे लोट रही है। गोरी भी भरी जवानी के भार म सेज मे लोट रही है। तात्पर्य यह है कि य तीनो यौवन के उन्माद से उन्मादित हैं।

विवाहिता पुत्री अपने पिता से पूछती है कि पीले पल्लों वाली ओढनी पड़ी पड़ी पुरानी हो रही है। बताइये कि मेरा गौना कब होगा ?

पीला पल्ला रो पोमचो, पडियो पुराणो होय।
बटो तो बूझे बाप न, म्हारो कद मुकलावा होय ? (सकलित)

यहाँ पीले पल्ला वाला 'पोमचा' प्रतीक है यौवन का जो गौने के अभाव मे व्यर्थ पुराना हो रहा है।

य साखियाँ प्रश्नोत्तर रूप मे चलती रहती हैं। अन्त में इन साखी बोलने वालो का एक दूसरे को साखी कहना छोड देने की चुनौती के साथ अश्लील शब्दों का प्रयोग भी होता है। यथा—

बादन वाड बड घणा, मसाण घणा है भूत।
साखी कैणो छाड दे, म्हारी आगली लुगाई का पूत ॥

प्रत्युत्तर मे—

बादन वाड बड़ घणा, मसाण घणा है भूत।
साखी कैवो छाड दे, थू असल ढाल्या का मूत ॥

पहली पक्ति दोना में समान है जिसका अर्थ है कि बादनवाडा (गांव-जिला-अजमेर) मे वट वृक्ष बहुत है और श्मशान म भूत बहुत हैं। हे मेरी पहली पत्नी के पुत्र ! तू साखी कहना छोड दे। दूसरा व्यक्ति प्रत्युत्तर में कहता है कि तू असल ढालियाँ (गाने वाली जाति विशेष) का मूत (सतान) है, तू साखी कहना छोड दे। इस प्रकार न केवल य अंतिम आक्षेप बल्कि अन्य कई ऐसी साखियाँ हैं जिनमे घोर अश्लीलता मिलती है।

प्रश्नोत्तर के रूप में य साखियाँ कई रातो तक कही-सुनी जाती हैं। इनमें विषय की विविधता के कारण श्रोता ऊबता नहीं है। इसके साथ साथ य मनोरजन, ज्ञान परीक्षा एव प्रदर्शन क दृष्टिकोण स लोक-जीवन में विशेष महत्त्व की भी हैं। ☐

मुरला गीत

मुरला गीत को लेकर मरुभारती (पिलानी राजस्थान) में बड़ा विवाद चल पड़ा। इस गीत के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने अपना अपना दृष्टिकोण रखा। इस गीत की नायिका को चरित्रहीन स्त्री माना गया और मोर को प्रेमी का प्रतीक। इसके पक्ष एवं विपक्ष में अनेक विद्वानों के विचारों के अवलोकन का अवसर मिला। निर्णय अथवा निष्कर्ष जैसी बात सामने नहीं आ सकी। अतः एक बार पुनः इस गीत पर विचार किया जाए तो अनुचित नहीं होगा।

नैतिकता को लेकर साहित्य का मूल्यांकन करने की परम्परा रही है। परन्तु नैतिकता को मान बनाकर हम जब साहित्य का मूल्यांकन करें तो स्वयं की नैतिकता का गला नहीं घोट सकते। किसी सत्य को ठुकराना आलोचक की नैतिकता का पतन है। इसी गीत के सम्बन्ध में मुरला गीत पुनर्विचार शीर्षक से मरुभारती अंक १ वर्ष १३ (अप्रैल १९६५) में मैं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मुरला गीत की आलोचना प्रस्तुत कर चुका हूं। किन्तु मरुभारती अंक ४ वर्ष १३ (जनवरी १९६६) में जब श्री गोविन्द अग्रवाल ने मुरला गीत पर्यवेक्षण पर दो शब्द लेख में लिखा— इस प्रकार हम देखते हैं कि मुरला गीत में कोई भी ऐसा अवांछनीय तत्व नहीं है जिसके आधार पर मुरला को मोर न मानकर कोई जार पुरुष माना जाए। पता नहीं आलोचक महोदय गण सात्विक सौंदर्य वाले इस मधुर और निर्मल गीत में बलात पापाचार का विष घोलकर समाज और राजस्थानी संस्कृति का कौनसा हित करना चाहते हैं? (पृ ६१) तो मन में सहज प्रतिक्रिया हुई। हम भावुकतावश किसी तथ्य का झुठलाना क्या जाए? यह प्रश्न समाज और राजस्थानी संस्कृति के हित अहित का नहीं है। प्रश्न है, गीत के सही मूल्यांकन का। हम सही मूल्यांकन के लिए पूर्वाग्रहों को त्यागना होगा इसलिए एक बार फिर मुरला गीत पर पुनर्विचार किया जाए।

लोक साहित्य के विद्वान डा० सत्येन्द्र ने अपनी पुस्तक ब्रज लोक

साहित्य का अध्ययन' एव 'लोक साहित्य-विज्ञान' दोनो पुस्तको मे ब्रज मे गाये जाने वाले 'मोरा' गीत का विवेचन किया है। 'मोरा' गीत एव राजस्थानी 'मुरला' गीत मे भाव-साम्य हैं। इस सम्बन्ध मे डाक्टर साहब ने स्वय ही लिखा है—'यही प्रसग एक गुजराती लोक गीत मे भी प्रस्तुत किया गया है जो श्री झवेर चन्द्र मेघाणी के गीत सग्रह 'रुढियाली रात' मे मौजूद हैं। एक दो राजस्थानी और पजाबी गीतो मे भी इस प्रसग की प्रतिध्वनि सुनाई देती है।'[1] आपने ब्रज म गाये जाने वाले इस लोक गीत को उद्धृत भी किया है—

"भर भादो की मोरा रैन अधरे राजा की रानी पानी नौकरी जी
काहे की गगरी रे मोरा काहे की लेज, काहे की जडाऊ धन ईडुरी जी
सोने की गगरी रे मारा रेसम लेज, रतन जडाऊ धन की ईडुरी जी
आगे आगे मोरा चाले पनिहारी जी, पीछे राजा जी क पहरुआ जी
एक बन नाघो, दूज बन नाघि, तीजे बन पहुँचो हैं जाइकें जो
जोई भरें मोरा देइ लुढकाइ, पख पसारि मारा जल पीवें जो
परें रे सरकि जा मोरा भरन दे नीर, मा घर सास रिसाइगी जी
त्यारी तो सासुल धनियाँ हमरी हैं माय, आज बसेरो हरीयल बाग मे जी
परे रे सरक जा मोरा भरन दे नीर, मा घर ननद रिसाइगी जी
त्यारी तो ननदुल धनियाँ हमरी रे भैन, आज बसरो हरीयल बाग मे जी
उठि-उठि सासुल मेरी गगरी उतारो, ना ता फोडूं चौरे चौक म जी
किन तौ ए बहुअल बोले हे बोल, ना काऊ दीन तोई ताँइने जो
ना कोऊ सासुन मोस बोले हैं बोल, ना कोऊ दीने हैं ताइने जी
बन को मोरा सासुल बनहो मे रहत है, वाकी काहेक मेरे मन बसी जी
उठि-उठि बेटा मरे मोर पछार, तरी धन रीझो बन क मोरला जी
मोइ देउ अम्मा मेरी पाचा हथियार, मोइ देउ पाँचो कापड जी
एक बन नाँघो राजा दूजो बन नाँघि तीज बन मोरा पछारिए जी
मार-मुरि राजा लाए लटकाइ, लाइ धरो है धन की देहुरी जी
उठि-उठि धनयाँ मेरी हरदी जौ पीस, मोरा छाकि बनाइए जी
हुरदी के पीन राजा जलदी न होइ, मोरा क छा कै मेरौ जी जरै जी
बन को तो मोरा राजा बन हो म रहत है, वाकी कौहाक मरे मन बसी जी
जो तुम्ह धनियाँ मरी मोरा की साध, सौन को मार गढाइए जी

[1] लोक साहित्य विज्ञान-पृ० ४३६

मोने को मोरा राजा चोरी में जाई, बाकी कौहोक मोरे मन बसी जी
जो तुम्हे धनिया मेरी मोरा की साध, काठ को मोरा बनाइए जी
'काठ को मोरा रे राजा जरि बरि जाइ, बाकी कौहोक मोरे मन बसी जी
जो तुम्हे धनिया मेरी मोरा की साध छाती पै मोर गुदाइए जी
छाती को मोरा रे राजा बालै न बोल, बाकी कौहोक मोरे मन बसी जी ।[1]

डा० श्री सत्येन्द्र ने आगे और लिखा है- ब्रजक्षेत्र मे श्रावण में जो गीत गाये जाते हैं, उनमे पनिहारिन, नटवा, चदना, बिजैरानी, मोरा सभी प्रबन्ध गीत हैं और उन सब मे ऐसे भावुक बर्णन हैं कि प्रशसा करनी पड़ती है । इन गीतो को अश्लील समझा जाता है·················मोरा मे प्रियतम के प्रतीक की कल्पना का सूत्र उस युग का स्मरण कराता है जब मानव की दृष्टि मे प्रकृति की विशाल और स्निग्ध गोद का स्पर्श सबसे अधिक महत्व रखता था ।"[2]

श्री युत गोविन्द अग्रवाल ने मनोहर शर्मा (लोक-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान हैं) के लेख की आलोचना करते हुए लिखा था—"आदरणीय श्री मनोहर शर्मा ने उक्त गीत के सबध मे लिखा है कि इस गीत मे मोर एक रूपक मात्र है, असल मे मोर एक व्यक्ति है, इसका आभास गीत मे कही नही मिलता ।"[3]

इनके इस लेख के पश्चात् अप्रेल, १६६५ के मरुभारती के अक मे लेखक ने 'मुरला गीत पुनर्विचार' शीर्षक लेख मे, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से डा० मनोहर शर्मा जी के मत की पुष्टि करते हुए लिखा--"फ्रायड के सिद्धान्तो के आलोक मे भी उक्त गीत की परीक्षा की जा सकती है। केवल चरित्र के दृष्टिकोण से मुरला-गीत की नायिका की रक्षा श्री गोविन्द अग्रवाल ने की है । किन्तु इस चरित्र रक्षा मे वे नायिका के अन्तस्थल मे झांकने में असमर्थ ही रहे । मुरला पक्षी है, सुन्दर पक्षी है, फिर नायिका उसको सावन की चादनी रात में देख रही है । चादनी रात सावन की है । ऐसी परिस्थिति में वह मोर पर आकर्षित हो रही है जिसे लेखक ने स्वाभाविक कहा है । मुरला मनुष्य का प्रतीक है । भाव-आरोपण (Feeling Projection)

१. वही-पृ० ४३५ से ४३६
२. वही-पृ० ४३८
३. मरुभारतीय-जनवरी १६६४-पृ० ६८

मानव-मन की एक गुप्त क्रिया मनोवैज्ञानिको ने मानी है। यह क्रिया अवाछनीय दमन के कारण उत्पन्न होती है। इस क्रिया के प्रभाव के कारण व्यक्ति अपने भावो का दूसरो पर आरोपण करता है। हमारे जीवन मे कोई ऐसी घटना हो जाती है, जिसके कारण हम स्वयं के अहम् (Ego) की दृष्टि मे अथवा समाज की दृष्टि में नीचे गिर जाते हैं। ऐसी घटना हो जाने पर उसका दमन होता है। दमन के द्वारा कुंठित-भावना (Supressed feeling) अपना रूप बदल कर पुन: सामने आती है।

यहाँ मुरला किसी पर-पुरुष का प्रतीक है। किन्तु नायिका यदि उस प्रेम का प्रदर्शन स्पष्ट रूप से करती है तो वह अपनी ही दृष्टि मे गिर जाएगी। उसका अहम् (Ego) उसे कभी इसे स्पष्ट रूप से स्वीकार नहीं करने देता है। परिणाम स्वरूप उसके प्रेमी का प्रतीक मुरला बनता है। उसका प्रेमी निस्सदेह उसके पति से 'दो तिल आगला' अर्थात् कही अधिक सुन्दर है। किन्तु भारतीय नारी की मर्यादा और समाज की मान्यताए उसके अहम् को स्पष्ट रूप से यह कभी स्वीकार करने देगी? तभी वह मुरला को प्रेमी का प्रतीक बनाकर अपने अन्तस्थल के भावों का आरोपण 'मुरला' पर करती है। परिणाम स्वरूप उसकी दमित भावना इस नये रूप मे स्वछदता पूर्वक अभिव्यक्त हो जाती है। वह अपनी कुंठित भावनाओ का आरोपण करके ही चैन लेती है।"[1]

मरु भारती के इसी अक मे श्री बालकृष्ण नमा का लेख भी था—'मुरला-गीत-एक प्रत्यालोचन।" आपने भी यही प्रयत्न किया है कि मुरला को पुरुष नही माना जाये। इसके लिए अपने गीत मे उल्लिखित परिस्थितियों का उद्धरण देते हुए कहा है—"अतः इस कथन के मूल मे मोर रूपी पुरुष की ओर नायिका की आसक्ति का कोई भाव नही है।"[2] आगे आपने लिखा है कि "गीत का मनोविज्ञान नायिका के पर-पुरुष प्रेम की ओर सकेत नहीं करता वरन् केवल इस की ओर सहज भाव से किया गया व्यंग्यात्मक परिहास कितना भयंकर परिणाम ला सकता है।"[3] लोक साहित्य के अध्येताओं को

१. मरु भारती अप्रैल १९६१ पृ० ३५-३८

२. वही पृ० ३९

३. वही पृ० ४०

आगाह करते हुए आपने लिखा है—"इस या उस वाद के दृष्टिकोण से लोक-साहित्य का मूल्यांकन केवल उसका विकृत रूप ही दिखा सकेगा।"[1]

श्रीयुत नेमा ने इसे 'व्यंगात्मक-परिहास' ही माना है। ननद-भावज की ईर्ष्या तो लोक-गीतों एवं लोक-कथाओं में पग-पग पर मिलती है। ईर्ष्या की भावना के स्थान पर आप इसे परिहास कह कर कौन से दृष्टि-कोण से देख रहे हैं? जबकि मोर स्वयं स्वीकार करता है—

"म्हे तो सुन्दर रूपां का रखवाल जी,
काई थारे रूपा पर मुरलो रीझियो।"

जब मोर ने नायिका के रूप पर मोहित होने की बात कही तो नायिका ने उस प्रत्युत्तर में कुछ नहीं कहा। क्यों? एक विवाहिता स्त्री को कोई कहे कि मैं तुम्हारे रूप पर मुग्ध हो गया हूं और वह सच्चरित्रा इसका कोई प्रतिवाद नहीं करे? प्रतिवाद के स्थान पर वह अपनी ननद से कहे कि— "काईं थारै बीरा से दोय तिल आगलो।" पति तो भारतीय नारी का परमेश्वर होता है, उसकी तुलना में तो वह स्वप्न में भी किसी को श्रेष्ठ नहीं ठहरा सकती, फिर परिहास तो जागृतावस्था की बात है।

दूसरी बात जिसकी ओर श्री नेमा एवं श्री अग्रवाल का ध्यान नहीं गया वह यह है कि नायिका मोर के संबंध में उक्त बात कह देने के पश्चात ननद से यह प्रार्थना क्यों करती है—'काईं-मत ना सिखाइयो थारै बीर नै।" वह न केवल बीर बल्कि मां को भी जाकर नहीं सिखाने की बात ननद से कहती है। यदि उक्त कथन के पीछे कोई रहस्य न होता तो नायिका ननद को सास व पति को न सिखाने की बात क्यों कहती?

श्री गोविन्द अग्रवाल ने मरु भारती जनवरी १९६४ में लिखा है— 'लेकिन भावज के लिए 'नखराली' कह कर मानो कवि ने सब कुछ कह दिया है।"[2] वास्तव में यह 'नखराली' शब्द ही वह सुराग (Clue) है जिससे गीत की मूल आत्मा की ओर हम बढ़ते हैं। नखराली छदगारी, शब्द लोक गीतों में जहां भी प्रयुक्त हुए हैं, वहां अच्छे अर्थों में प्रयुक्त नहीं हुए हैं। यद्यपि इस शब्द के केवल बुरे अर्थों में प्रयुक्त होने का मैं दावा नहीं करता।

---

१ मरु भारती अप्रैल १९६५ पृ० ४१

२ वही पृष्ठ ६७

किन्तु एक उदाहरण, जिसे मैं यहां प्रस्तुत कर रहा हूं, इस शब्द का प्रयोग बच्छ अर्थ मे नही हुआ है। एक गाली है जो एक समधिन दूसरी समधिन को लक्ष्य कर गाती है। इसमे कहा गया है कि समधी जी वाली मेरी सौत अपना 'दुध्या' यौवन बेचती फिरती है। वह उसे बेचना भी नहीं जानती, बाजारों में डोलती फिरती है। सामने उसे अमुक समधी जी मिल गये। उन्होंने उसकी लाल-बगड़ी पकड़ली। तो वह कहने लगी कि मेरा हाथ छोड़िए मेरी लाल बगड़ी मुड़ रही है। जिस पर समधी जी कहते हैं कि हे नखराली! हे चरत्याली! मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें नई बगड़ी बनवा दूंगा।[1] स्पष्ट ही नखराली एवं चरत्याली दोनों शब्द बुरे अर्थ अथवा अवैध सम्बन्ध रखने वाली समधिन के लिए प्रयुक्त हुए हैं। अतः क्या मुरला गीत की भाभी अथवा नायिका के लिए प्रयुक्त नखराली शब्द को इस अर्थ में ग्रहण नही किया जा सकता? सामान्य-परिहास मे नारी अपने पति की मर्यादा को भंग करेगी? किसी सत्य को स्वीकारने को यदि हम तैयार नहीं हो तो उसे झुठलाने का प्रयत्न क्यों करें।

एक गीत और देखिए —

तीस रुप्या रो मालुड़ो पड़ियो पेयो के माय
ए मोरियो बाड़ी चुग रह्यो, जनावर बाड़ी चुग रह्यो
सासू केवें बहू पहरै ने, परणियाड़ो पर घर जाय।"[2]

सास कहती है कि तीस रुपये का माल सन्दूक मे पड़ा है। मोर बाड़ी को चुग रहा है। जानवर बाड़ी को चुग रहा है। सास कहती है कि बहू, तुम इसे पहनो वरना तुम्हारा पति पराये घर जाता है। जहाँ तीस रुपये का माल प्रतीक है मोर या जानवर का बाड़ी को चुगना भी प्रतीकात्मक ही है और अंतिम पंक्ति में स्पष्ट ही हो जाता है कि पति पराये घर जाता है। मोर क्योंकि प्रेमी का प्रतीक रहा है अतः उस परम्परा मे यहाँ भी 'मोर

१ समाई जी वाली म्हारी सौत दुध्यो जोबन बेचती फिरै
वा तो बेच न जाणे, बजारां म डोलती फिरै
सामा मिलग्या ....बिका टार पकड़ी बींरी लाल बगड़ो
छोड़ो छोड़ो म्हारो हाथ मुड़ै म्हारी लाल बगड़ी
चालो चालो नखराली म्हारी सार और घड़ाद्यां लाल बगड़ी-मर्यादित

२ —मालिन

बाडी चुग रहा है' कह कर निर्वाह किया गया है। तात्पर्य यह हुआ कि मोर परम्परा में ही प्रेमी के रूप में लोक गीतों में स्थान पाता आया है। इसी प्रकार यदि 'मुरला' गीत का मोर भी प्रेमी का प्रतीक हो तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?

ये ही तथ्य हैं जिनके आधार पर हम मुरला को प्रेमी का प्रतीक मानते हैं। साथ ही मुझे सकलन कार्य करते हुए जिस गीत की प्राप्ति हुई है, उसे भी मैं यहा उद्धृत कर देता हूँ जिसमे मोर के साथ भाभी भाग जाने का उल्लेख है।

ननद भौजाईयाँ पाणी निकली ए
ए माँ गेला में हो गई राड,
वा फिरे कुँवा पर अकेली रे !
नणद पाणी ले'र पाछ्वी बावडी,
वा फिरे कुँवा पर अकेली रे !
नणद सिखाई मायने ,
के माँ वहू न समझाय ! वा फिरे......
माँ सिखायो वीरा लाल न,
हाँ रे लाल मखण ने समझाया ! वा फिरे......
ऊँचले जी मगर हल खड़ूँ,
भातो लेय'र मेल । वा फिरे......
भातो लेय'र निकली ए मा,
घूँघट छायो काग । वा फिरे......
उडरे काला कागला,
क अब आयो अतकाल ! वा फिरे......
लम्बी जी डाँग गडावस्यूँ ए,
ए माँ लाको उवा मोरो मे। वा फिरे......
ए जोग मारियो तीर,
ए मा लाग्यो हिवड रे माय ! वा फिरे......
मार न मार बावडियो ए मा,
अब हाथ ज धुवाय ! क वा फिरे......
काई तो मार्यो जगल को रोझडा रे ?
रे लाल काई ना मारी घर री नार ? वा फिरे. ...

नहीं तो मारियो जरणी जगल को रोझडो ऐ,
ए मा ! मारी ए घर री नार ! वा फिरे......'

मुरला गीत मे और इस गीत की कथा मे अन्तर है। इसमे नायिका का पति न केवल मोर को बल्कि नायिका को भी मार देता है। स्थान भेद के कारण एक ही गीत के विभिन्न रूपान्तर पाये जाते हैं। इन रूपान्तरो म कथा-क्रम का थोडा इधर उधर हो जाना भी कोई आश्चर्य की बात नही है।

"'मुरला गीत' पर पर्यवेक्षण" नामक लेख म श्री गीडा राम वर्मा ने मरु भारती, अक्टूम्बर १९६५ मे मुरला गीत का एक रूपान्तर श्री विजय दान देथा के सग्रह 'गई-गई ये समदतलाव' से उद्धृत भी किया है।[1] इसके पश्चात आपने लिखा है—"गीत के रूपान्तर की इन पक्तियो पर ध्यान देने से उसका मोर स्पष्ट ही एक सोदर्य शाली पुरुष का प्रतीक प्रकट होता है(पृ० ६५)।"

मरु भारती 'जनवरी' ६६ मे श्री गोबिन्द अग्रवाल ने श्री गीडाराम वर्मा के उक्त गीत तथा "जोगीडा" गीत की पक्तियो को उद्धृत करने पर लिखा—"मुरला गीत की इन गीतो के साथ वैसे ही कोई तुलना नही की जा सकती, जैसे सोने की पीतल के साथ। मुरला गीत (और उसके पात्रो को) इन गीतो की श्रेणी मे रखना घोडे को गधो की पक्ति म बिठलाना है। मुरली गीत म जहा समाज का उत्कृष्ट और परिष्कृत रूप उभरता है, वहा इन दोनो गीतो मे समाज और गीतकार की हीन भावनाए ही विकृत रूप मे सामने आती हैं। मुरला गीत सत्कुलो म पूर्ण हार्दिकता और स्वच्छता से गाया जाता है, जबकि प्रस्तुत दोनो गीत भले घरो म गाये जाने लायक नही हैं। इन गीतो म अनाचार को बढावा मिलता है अत त्याज्य है'।" (पृ० ६०)

आलोचक यदि पूर्वाग्रह का त्याग न करके भावुकता के वशीभूत होकर विचार करे तो वह सही मूल्याकन करने मे असमर्थ रहेगा। हम एक दृष्टि—

---

१ आगै-आगै मारिगा रो साथ, लारै वेवै गड गी गूजरी
मारिगा मारग मारग रा साथ, उजड वेवै गड गी गूजरी
बैठो रे बीरा जाजम ढाल, थारी पगदि धाडी घाटा बाधिया
मारग-मारग मारिगा रा साथ, आ उजड बुहै नै दड गी गूजरी
गिया रे बागा के माय, डाली बैठा मावन मारिगा
काई गाटा बैटी नड गी गूजरी

कोण विशेष से ही विचार नहीं करके सभी दृष्टिकोणों से विचार करने में क्या आपत्ति हो सकती है ? लोक शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है। लोक साहित्य के अध्येता को भी उसकी व्यापकता के साथ चलना ही उपयुक्त होगा अन्यथा लोक साहित्य का अध्ययन न हो कर वह वर्ग साहित्य का अध्ययन हो जायेगा। श्री गौड़ा राम वर्मा ने जिन गीतों की पंक्तियों को उद्धृत किया है उनमें पहले गीत की पंक्तियाँ तो निश्चित रूप से हमारे विवेच्य गीत मूरला का रूपान्तर है अतः हमें इस तुलना में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। फिर तुलनात्मक दृष्टिकोण से यदि किसी मान्यता को स्थापित करने में सहायता मिलती है तो क्यों नहीं उसका उपयोग किया जाये। यह कहना कि यह गीत सत्कुलों में नहीं गाया जाता, एकाकी दृष्टिकोण है। लोक के अन्तर्गत सभी कुल आते हैं। अतः हमें निस्संकोच होकर सभी कुलों, वर्गों के गीतों से तुलना करनी ही होगी। जो भी रूपान्तर किसी गीत के हमें प्राप्त होते हैं उनके संदर्भ में किसी गीत को देखना स्वस्थ दृष्टिकोण ही कहा जाएगा।

श्रीयुत अग्रवाल जी ने रामचरित मानस में सीता जी द्वारा रामचन्द्र जी को स्वर्ण मृग की प्रशंसा में कही गई पंक्तियों का उद्धृत किया है, वहाँ मर्यादा का निर्वाह हुआ है। परन्तु हमारे गीत की नायिका तो मर्यादा का वहीं उल्लंघन कर जाती है जहाँ वह मोर की तुलना पति के रूप से करके पति से मोर का सुन्दरता में श्रेष्ठ बताती है। फिर जब आप स्वयं अभिजात साहित्य की पंक्तियों को तुलना के लिए प्रस्तुत कर सकते हैं तो श्री वर्मा ने यदि लोक-साहित्य से ही इसी गीत के एक रूपान्तर को तुलना के लिए प्रस्तुत किया तो यह सोने से पीतल की तुलना कैसे हुई। यह तो सोने को पारस के निकट रख कर उसकी परीक्षा हुई।

अन्त में आपने कहा है—"पता नहीं, आलोचक महोदयगण सात्विक सौन्दर्य वाले इस मधुर और निर्मल गीत में बलात पापाचार का विष घोलकर समाज और राजस्थानी संस्कृति का कौनसा हित करना चाहते हैं (पृ० ६१)। वास्तव में जहाँ विष घुला हुआ है वहाँ विष के घोलने की क्या आवश्यकता ? संस्कृति का हित सत्य को झुठलाकर नहीं किया जा सकता। जो तथ्य है उनकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है। क्या हम किसी तथ्य का हित अथवा अहित का विचार कर ठुकरा दें ?

अत मे डा० सत्येन्द्र जी के मत का फिर से उल्लेख करना होगा— 'यहा मयूर उसी प्रकार एक आदर्श-प्रेमी का प्रतीक है जैसे यूनानी-लोक-वार्ता म हस को उपस्थित किया गया है।"[1]

इससे आगे आपने कहा है—"ईर्ष्या ज्यों की त्यो कायम है। आज भी नारी को किसी मानव 'मयूर' की ओर आकर्षित देखकर पुरुष के हृदय म ईर्ष्या और प्रतिस्पर्द्धा की ज्वाला भडक उठती है।"[2] वास्तव म यही ज्वाला हमारे मुरला गीत की नायिका के पति के हृदय मे भडक उठी थी। इसके लिए मैंने लिखा था—"उसका पति जब यह सुनता है कि उसको पत्नि 'मुरला' के सौन्दर्य पर आसक्त है तो वह उसे मारने के लिए चल देता है। पति का मानस इस समय इडिपस-कॉम्पलेक्स (Edipus Complex) से विकार ग्रस्त है।'[3]

इन सब बातो पर विचार करने के बाद में यह मानना कि मुरला प्रेमी का प्रतीक है, न्यायोचित ही लगता है। नायिका का चारित्रिक-पतन तो गीत की मूल आत्मा है ही। अतिम भाग म पति द्वारा बाजार जाकर विभिन्न स्थानो पर मोर की आकृति बनवा देना पति की उदारता का परिचायक है।

अत मे पाठको की सुविधा के दृष्टिकोण से मरु भारती जनवरी, १६६४ म 'मुरला गीत म सौंदर्य भावना' नामक लेख में दिय गये गीत को हम आद्योपात उद्धृत कर रह हैं। □

---

१ लोक साहित्य विज्ञान—पृ० ४३६

२ लोक साहित्य विज्ञान—पृ० ४३८

३ मरु भारती अप्रैल १६६५—पृ ३८

वसन्त वैतालिक : कोयल

आम्र-मञ्जरी की भीनी सुगन्ध जब अमराइयों से प्रवाहित होकर वासन्ती-पवन की मधुरता एवं मादकता को द्विगणित करती है, उसी समय वसन्त-वैतालिक-कोयल भी उसके स्वागतार्थ पंचम स्वर में अभिनन्दन गान गाने लगती है। महाकवि कालिदास ने कोकिल को परिनिष्ठित साहित्य में प्रतिष्ठित किया था। संस्कृत-साहित्य एवं अन्य भाषाओं के काव्यों में भी कोकिल को परवर्ती कवियों ने सम्माननीय स्थान प्रदान किया। अभिजात साहित्य का प्रिय एवं सम्माननीय पक्षी लोकसाहित्य में भी समादृत है।

कोयल कुरूप एवं मातृत्वपद से वंचित होते हुए भी साहित्य जगत् का प्रिय पक्षी रहा है। उसका कारण उसका सुरीला स्वर रहा है। कहा जाता है कि कोयल अपने अण्डों को स्वयं नहीं सेती वह मादा कौए के अंडों में अपने अंडे रख जाती है और स्वयं मातृत्व के उत्तरदायित्व से मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरण करती है। लोक जीवन में यह विश्वास प्रचलित है कि धूर्त कोयल अपने बच्चों का पालन-पोषण कौए से करवाती है। बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तो वे कौए को छोड़कर उड़ जाते हैं।

माता-पिता पुत्री का कौए की भाँति ही पालन-पोषण करते हैं, किन्तु जैसे कोयल कौए को छोड़ भागती है उसी प्रकार पुत्री भी समय आने पर विवाहित होकर अपने पति के घर चली जाती है। अतएव पुत्री के प्रतीक के रूप में कोयल का वर्णन लोक गीतों में उपलब्ध है। राजस्थानी कन्या की विदाई के समय गाया जाने वाला गीत यहाँ द्रष्टव्य है —

> हे मैं थाने पूछां म्हारी कोयल ! हे मैं थाने पूछां।
> इतरो बाबासा रो लाड छोडने बाई सीध चाल्या।[1]

यहाँ विदा होती हुई पुत्री से प्रश्न किया गया है कि हे मेरी कोयल ! तुम अपने पिता का इतना प्रेम छोड़कर कहाँ चली ?

---

१. संकलित

एक गुजराती गीत में वधू का कोयल के रूप में उल्लेख देखा जा सकता है—

बाला हरियाला डुंगर, काली कोयल बोले भई।
आजना मधुवा बेनी सासरिये केम गोठ रो वाई।[1]

कुमाऊ के एक लोकगीत मे बागो की कोयल (पुत्री) से प्रश्न किया गया है कि वह बागों को छोड़ कहाँ चली—

मेरी ए बागा दी ए कोयले, बागे छड्डी बरयू चाल्लो ए ?[2]

एक मालवी गीत मे भी इससे भावसाम्य मिलता है—

वन खण्ड की ए कोयल वन खण्ड छोड कठे चाली ?[3]

हाड़ोती गीत में भी पुत्री को बागो की कोयल कहा गया है—

धीयड़ म्हारा बागाँ की कोयलिया, काल दिन उड़ जासो।[4]

गुजराती गीतो मे और उद्धरण दिये जा सकते हैं, जिनमे वधू को कोयल कहा गया है—

१. बाला हरियाला डूंगर, कालो कोयल बोले जो,
   अहीना रहेवासी······बा, सासरिये केम रहासे जो।
२. कोयलडी टहुके छे बेनी ने मांडवे,
   दादा तेढावु झाझी होश राज,
   कोयलडी टहुके छे बेनी ने मांडवे।

अन्यत्र वर वधू को 'कोयल राणी' से सबोधित कर अपने देश चलने का आग्रह करता है—

कोयल राणी, हालो आपणा देश मा रे
पियर मा रहेतो, हालो आपणा देश मा रे ![5]

---

१. गुजराती लोक साहित्य माला (भाग ७), पृ० १५४
२ प्राच्य-भारती में प्रकाशित लेख 'कुमाऊँ के गीत' से
३. मालवी लोक गीतो का विवेचनात्मक अध्ययन—डा० चिन्तामणि उपाध्याय, पृ० १५६
४ हाड़ोती लोकगीत—डा० चन्द्र शेखर भट्ट, पृ० १११
५. (१) गुजराती लोकसाहित्य माला (भाग ६), पृ० १७२
   (२) वही (भाग ७), पृ० ४२
   (३) वही (भाग ६), पृ० १०४

कहीं-कहीं हरे-वन को भी कोयल का निवास बताया गया है ।[1] डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है--कोयल और आम्र वृक्ष का अभिन्न सम्बन्ध है। परन्तु लोकगीतों म कोयल का घनी बसवारि मे बैठकर बोलने का भी उल्लेख मिलता है । कोयल का मधुर शब्द बिरहणी स्त्री के कष्ट को बढ़ाने वाला है । इसलिए उसकी बोली को 'बिरहिया' कहा गया है ।" आपने गीत भी उद्धृत किया है—

'मोरा पिछुवारावा रे घनी बसवरिया ।
ताहि चढि कोयल री बोले रे बिरहिया ।
राम की ताहि रे चढी ना ।
कोइलरी सबद सुनि सवरिया उठि बइठलि ।
राम बटनिया लेके ना ।"[2]

कोयल के बोलने का सम्बन्ध वर्षा के आगमन से भी माना जाता है। यदि वर्षा नहीं आएगी तो आम सूख जाएगे और कोयल धर्मराजा को शाप देगी । अत, धर्मराजा से एक गीत म कहा गया है कि मेघराजा को शीघ्र भजिए —

लीलूडा आवला सुकाई गिया,
कोयलडी दीश शराप रे धरमराजा
मेघराजा ने वे' लेरा मोकल जो ।[3]

कोयल से लोकगायक मधुर शब्द सुनाने का आग्रह करता है —
अेक अतलसी कोयल, अतलसु बोलो,

---

१ (क) म्हारे हरिया बन की कोयलडी ।
--हाडौती लोकगीत—डा० चन्द्रशखर भट्ट, पृ० ६५

(ख) कोयल राणी टुहु-टुहु करता, अमारा बाग मा आवो रे लोल ।
--गु० लो० सा० मा० (भाग २) पृ० २३

(ग) हरियँ हरियालँ कालँ काली कोयल बोले राज,
बोले, बोलावे, सैया सबद सुणावे राज ।
--परम्परा-(भाग १ अक १) पृ० १८५

२ भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन डा० कृष्ण देव उपाध्याय, पृ० ३५३

३ अखण्ड-आनन्द-फरवरी' ७१, पृ० ५३

तमारो रे शब्द सोहामणो ।[1] (क)

लोकगीतों में तोते के साथ कोयल विविध सम्बन्धों का उल्लेख हुआ है। यथा भाई-बहन के रूप में--

हूँ तमने पूछूं मारा वीर रे पोपट जी,
कोणे तमारी चांच हीगलोक भरी ?
माडी नी जाई मारी बेन रे कोयल बहेन,
तेणे मारी चाच हीगोलेके भरी ।[1](ख)

अन्यत्र सूडा (तोता) व कोयल को पति-पत्नी के रूप में भी स्वीकृत किया गया है। इस सम्बन्ध में श्रीयुत स्वर्गीय झवेर चन्द मेघाणी ने लिखा है—"तोते-कोयल के युग्म की कल्पना क्यों की गई ? दूसरे गीत में (काली शी कोयल शब्दे साहामणी) भी तोता-कोयल को वर-वधू बनाया गया है।"

एक मालवी गीत में कोयल को शुक बहन कहा गया है। वह अमराइयों में बोलती है और अपने भाई शुक को दाना भी चुगाती है—

हु तमे पूर्छुं म्हारी बाडी का सुआ, किने तमारी चोंच चुगा भरी।
आम्बा की डार म्हारी बेन कोयलडी, उने म्हारी चोंच चुगा भरी।[2]

पक्षियों का मधुर स्वर उद्दीपन का कार्य करता है। वियोगिनी नायिका रात्रि-जाग जाग कर व्यतीत करती है। यदि कभी नींद आ भी जाय तो पक्षी अपनी मधुर वाणी से उसकी नींद भंग कर देते हैं। उसके हृदय की विरह-वेदना को और बढ़ा देते हैं। कोयल का स्वर वियोगिनी के लिए उद्दीपन-कारक एवं हृदय-विदारक होता है। जब वन में मोर बोलते हैं और कोयल रानी भी किल्लोल करती है तो वियोगिनी अपनी सखी से पूछती है कि मेरा प्रियतम कब आएगा—

वनमा वाले झीणा मोर, कोयल राणी किल्लोल करे रे लोल।

x x x x

वेनी मारो उताराना करन्नरो, जादव रो वयारे आवे रे लोल।[3]

यहाँ मोर एवं कोयल की वाणी ने प्रियतम की स्मृति को ताजा कर

---

१. (क) गु० लो० मा० मा० (भाग ७) पृ० २१३
१. (ख) वही-(भाग १०) पृ० ५
२ मालवी लोक गीत एक वि०अ०–डा० चिन्तामणि उपाध्याय, पृ० ४१५
३ रढियाली रात–(भाग २), पृ० ८८

वसन्त वैतालिक : कोयल

आम्र-मञ्जरी की भीनी सुगन्ध जब अमराइयों से प्रवाहित होकर वासन्ती-पवन की मधुरता एवं मादकता को द्विगणित करती है, उसी समय वसन्त-वैतालिक-कोयल भी उसके स्वागतार्थ पंचम स्वर में अभिनन्दन गान गाने लगती है। महाकवि कालिदास ने कोकिल को परिनिष्ठित साहित्य में प्रतिष्ठित किया था। संस्कृत-साहित्य एवं अन्य भाषाओं के काव्यों में भी कोकिल को परवर्ती कवियों ने सम्माननीय स्थान प्रदान किया। अभिजात साहित्य का प्रिय एवं सम्माननीय पक्षी लोकसाहित्य में भी समादृत है।

कोयल कुरूप एवं मातृत्वपद से वंचित होते हुए भी साहित्य जगत् का प्रिय पक्षी रहा है। उसका कारण उसका सुरीला स्वर रहा है। कहा जाता है कि कोयल अपने अण्डों को स्वयं नहीं सेती वह मादा कौए के अंडों में अपने अंडे रख जाती है और स्वयं मातृत्व के उत्तरदायित्व से मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरण करती है। लोक जीवन में यह विश्वास प्रचलित है कि धूर्त कोयल अपने बच्चों का पालन-पोषण कौए से करवाती है। बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तो वे कौए को छोड़कर उड़ जाते हैं।

माता-पिता पुत्री का कौए की भांति ही पालन-पोषण करते हैं, किन्तु जैसे कोयल कौए को छोड़ भागती है उसी प्रकार पुत्री भी समय आने पर विवाहित होकर अपने पति के घर चली जाती है। अतएव पुत्री के प्रतीक के रूप में कोयल का वर्णन लोक गीतों में उपलब्ध है। राजस्थानी कन्या की विदाई के समय गाया जाने वाला गीत यहां दृष्टव्य है —

हे मैं थाने पूछा म्हारी कोयल ! हे मैं थाने पूछा।
इतरो बाबासा रो लाड छोड़ने बाई सीध चाल्या।[1]

यहाँ बिदा होती हुई पुत्री से प्रश्न किया गया है कि हे मेरी कोयल ! तुम अपने पिता का इतना प्रेम छोड़कर कहाँ चली ?

---

१. संकलित

एक गुजराती गीत में वधू का कोयल के रूप में उल्लेख देखा जा सकता है—

काला हरियाना डुगर, काली कोयल बोले भई।
आजना मधुवा बेनी सासरिये केम गोठ रो बाई।[1]

कुमाऊ के एक लोकगीत मे बागों की कोयल (पुत्री) से प्रश्न किया गया है कि वह बागा को छोड कहाँ चली—

मेरी ए बागा दी ए कोयले, बागे छड्डी करथू चाल्लो ए ?[2]

एक मालवी गीत मे भी इससे भावसाम्य मिलता है—

वन खण्ड की ए कोयल वन खण्ड छोड कठे चाली ?[3]

हाडोती गीत मे भी पुत्री को बागो की कोयल कहा गया है—

धीयड म्हारा बागां की कोयलिया, काल दिन उड जासी।[4]

गुजराती गीतों से और उद्धरण दिये जा सकते हैं, जिनमें वधू को कोयल कहा गया है—

१. काला हरियाला डूंगर, काली कोयल बोले जो,
अहीना रहेवासी······बा, सासरिये केम रहासे जो।
२. कोयलड़ी टहुके छे बेनी ने मांडवे,
दादा तेढाव छाडी हाम राज,
कोयलडी टहुके छे बेनी ने मांडवे।

अन्यत्र वर वधू को 'कोयल राणी' स संबोधित कर अपने देश चलने का आग्रह करता है—

कोयल राणी, हालो आपणा देश मा रे
पियर मा रहेती, हालो आपणा देश मा रे ![5]

---

१. गुजराती लोक साहित्य माला (भाग ७), पृ० १५४
२ प्राच्य-भारती मे प्रकाशित लेख 'कुमाऊँ के गीत' से
३ मालवी लोक गीतों का विवेचनात्मक अध्ययन—डा० चिन्तामणि उपाध्याय, पृ० १५६
४ हाडौती लोकगीत—डा० चन्द्र शेखर भट्ट, पृ० १११
५ (१) गुजराती लोकसाहित्य माला (भाग ६), पृ० १७२
(२) वही (भाग ७), पृ० ४२
(३) वही (भाग ६), पृ० १०४

कोयल का रग काला होता है फिर भी लोकगायक तो वह सभवत अपनी वाणी के कारण प्रिय रही है। अत रग का औचित्य स्थापित करते हुए वह कहता है कि गबर (श्रेष्ठ हाथी) काल रग का होता है काजल की रेखा भी काले रग की होती है कोयल क बच्चे भी काले रग क होत हैं और मेघ भी काले होते है यथा--

> काला त गभर हाथीडा, काली त काजल रेख।
> काला त कोयलडी ना बचला, काला मेघ मलार [1]

कोयल कू हू हू हू उ क्यो करती है, इस स दभ म एक लोक कथा प्रसिद्ध है। दो बहन थी दोनो में परस्पर गभीर प्रम था। छोटी बहन का नाम कुहू' था। दोनो बहन एक बार जगल मे विचरण करने गई। वन म छोटी बहन कुहू' बडी स अलग होकर खो गई। बडी बहन उस ढूढ ढूढ कर थक गई, परन्तु वह मिल नहीं सकी। तब बडी बहन 'कुहू कुहू' का शब्द करती घूमन लगी और अत म मर गई। मृत बडी बहिन दूसरे जन्म मे कोयल बनकर ज मी और वही कुहू शब्द आज भी पुकारती है।

कोयल के सम्ब ध ये लोक जीवन म मान्यता प्रचलित है कि जब वह आम्र मजरी खाती है तभी उसक कठ से स्वर फूटता है। कि तु जब करी लगती है तो उसकी चोच पक जाती है। परिणामत वह करी नही खा पाती है इसलिए कुहू कुहू पुकारती रहती है। इसी आधार पर कहावत भी है कि कोयल की चोच करी खान क अवसर पर ही पक जाती है। अर्थात ठीक अवसर पर ही बाधा उत्पन्न हो जाती है। अत वह विधि की विडम्बना क विरोध म कुहू कुहू करती ह। मामा यत बसन्त एव ग्रीष्म मे ही कोयल की कहू सुनाई दती ह और इसी काल को उसका सवननकाल भी कहा जाता ह। ग्रीष्म क अतिरिक्त कोयल टहुकती नही ह एक गुजराती गीत म तोता कोयल स प्रश्न करता ह--

> सूडलो भण र कायल क्या गई ती ?
> आवो रूडो आबलियानी डाल्य
> मेली ने कोयल क्या गई ती [2]

---

१ चदडी (भाग १) पृ० ६४

२ अखण्ड आन द--फरवरी ७१ पृ० ५३

अर्थात् हे कोयल ! तुम आम की सुन्दर शाखा छोड़कर कहाँ गई थी ? अमराई एवं कोयल का अभिन्न सम्बन्ध है । अमराई कोयल का प्रिय निवास स्थान है । एक मालवी गीत में आम की शाखा पर कोयल के होने का उल्लेख है—

अम्बा की डार म्हारी बैन कोयलडी⋯।[1]

उस आम की चौकीदार भी एक गुजराती गीत में कहा गया है—

कोयलडी नो मारीए रे, आंबलानी रखवाल मारा वा'ला ।[2]

अन्यत्र कहा गया है—

लीला आंबानु मारु वाडियु रे, त्यां मारे कोयल बाई नो वास, कोयल करे टौकरा रे ।[3]

एक और गीत में कहा गया है कि कोयल का स्थान हरा-हरियाला वन एवं अमराई है—

लीली वाडी मा लीलो आंबलो रे,

त्यारे कोयलडीनो वास, कोयल बोले टहुकडे रे ।[4]

आम के अतिरिक्त कोयल का निवास बाग में भी माना गया है ।[5]

---

१ मालवी लोक गीतों का विवेचनात्मक अध्ययन—डा॰ चिन्तामणि उपाध्याय, पृ॰ ४ ५

२ रढ़ियाली रात (भाग २), पृ॰ ११८

३ गुजराती लोक साहित्य माला (भाग १) पृ॰ १३९

४ अखण्ड आनन्द-फरवरी १९७१, पृ॰ ५१

५ (क) जेट महिनो लाग्यो जी
डूंगर बोल्या मोर, बागा म बोली कोयली ।
—राजस्थानी लोक गीत—डा॰ स्वर्णलता अग्रवाल, पृ॰ १६८

(ख) काली श्री कोयल बागु मा बोले,
वन माँ बोले मोर, का'ना लेने रूमाल ।
—गु॰ लो॰सा॰मा॰ (भाग १०) पृ॰ २८२

कहीं-कहीं हरे-बन को भी कोयल का निवास बताया गया है।[1] डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है--कोयल और आम्र वृक्ष का अभिन्न सम्बन्ध है। परन्तु लोकगीतों में कोयल का घनी बसवारि में बैठकर बोलने का भी उल्लेख मिलता है। कोयल का मधुर शब्द बिरहणी स्त्री के कष्ट को बढ़ाने वाला है। इसलिए उसकी बोली को 'बिरहिया' कहा गया है।" आपने गीत भी उद्धृत किया है--

"मोरा पिछुवारावा रे घनी बसवरिया।
ताहि चढ़ि कोयल री बोले रे बिरहिया।
राम की ताहि रे चढ़ी ना।
कोइलरी सबद सुनि सवरिया उठि बइठलि।
राम बटनिया लेके ना।"[2]

कोयल के बोलने का सम्बन्ध वर्षा के आगमन से भी माना जाता है। यदि वर्षा नहीं आएगी तो आम सूख जाएंगे और कोयल धर्मराजा को शाप देगी। अत, धर्मराजा से एक गीत में कहा गया है कि मेघराजा को शीघ्र भेजिए —

लीलूड़ा आबला सुकाई गिया,
कोयलड़ी दीअ शराप रे धरमराजा
मेघराजा ने वे' लेरा मोकल जो।[3]

कोयल से लोकगायक मधुर शब्द सुनाने का आग्रह करता है —
अेक अतलसी कोयल, अतलस बोलो,

---

१. (क) म्हारे हरिया बन की कोयलड़ी।
--हाड़ौती लोकगीत--डा० चन्द्रशेखर भट्ट, पृ० ६५

(ख) कोयल राणी टुहु-टुहु करता, अमारा बाग मा आवो रे लोल।
—गु० लो० सा० मा० (भाग २) पृ० २३

(ग) हरियै हरियाले कालै कालो कोयल बोले राज,
बोले, बोलावै, मैया सबद सुणावै राज।
--परम्परा-(भाग १ अक १) पृ० १८५

२ भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन डा० कृष्ण देव उपाध्याय, पृ० ३५३

३ अखण्ड-आनन्द–फरवरी' ७१, पृ० ५३

तमारो रे शब्द सोहामणो ।[1] (क)

लोकगीतो म तोते क साथ कोयल विविध सम्बन्धो का उल्लेख हुआ है। यथा भाई वहन क रूप म--

हूँ तमन पूछू मारा वीर रे पोपट जी,
कोण तमारी चाँच हीगनाके भरी ?
माडी नी जाई मारी बन रे कोयल वहेन
तेणे मारी चाच हीगोलेके भरी ।[1](ख)

अन्यत्र मूडा (तोता) व कोयल को पति-पत्नी के रूप म भी स्वीकृत किया गया है। इस सम्बन्ध म श्रीयुत स्वर्गीय झवेर चन्द मेघाणी ने लिखा है— तोते-कोयल के युग्म की कल्पना क्या की गई ? दूसरे गीत में (काली शी कोयल शब्दे सोहामणी) भी तोता कोयल को वर वधू बनाया गया है।"

एक मालवी गीत मे कोयल को शुक बहन कहा गया है । वह अमराइया म बोलती है और अपने भाई शुक को दाना भी चुगाती है—

हु तमे पूछुं म्हारी बाडी का सुआ, किने तमारी चोच चुगा भरी ।
आम्बा की डार म्हरी बेन कोयलडी, उने म्हारी चोच चुगा भरी ।[2]

पक्षियो का मधुर स्वर उद्दीपन का कार्य करता है । वियोगिनी नायिका रात्रि जाग जाग कर व्यतीत करती है। यदि कभी नीद आ भी जाय तो पक्षी अपनी मधुर वाणी से उसकी नीद भग कर दत हैं। उसके हृदय की विरह-वदना को और बढा देते हैं। कोयल का स्वर वियोगिनी क लिए उद्दीपन कारक एव हृदय विदारक होता है। जब वन म मोर बोलत हैं और कोयल रानी भी किल्लोल करती है तो वियोगिनी अपनी सखी से पूछती है कि मेरा प्रियतम कब आएगा--

वनमा बाल झीणा मोर, कोयल राणी किल्लोल करे रे लोल ।

x x x x

वनी मारो उतारानो करम्नरो, जादव रो वयारे आवे रे लोल ।[3]

यहाँ मोर एव कोयल की वाणी ने प्रियतम की स्मृति को ताजा कर

१ (क) गु० लो० मा० मा० (भाग ७) पृ० २'३
१ (ख) वही (भाग १०) पृ० ५
२ मालवी लोक गीत एक वि०अ०—डा० चिंतामणि उपाध्याय, पृ० ४१५
३ रढियाली रात—(भाग २), पृ० ८८

कहीं-कहीं हरे-वन को भी कोयल का निवास बताया गया है।[1] डा० उपाध्याय ने लिखा है--कोयल और आम्र वृक्ष का अभिन्न सम्‍ परन्तु लोकगीतों में कोयल का घनी बमवारि में बैठकर बोलने उल्लेख मिलता है। कोयल का मधुर शब्द विरहणी स्त्री के कष्ट क बाला है। इसलिए उसकी बोली को 'विरहिया' कहा गया है।" आप भी उद्धृत किया है--

"मोरा पिछुवारावा रे घनी बसवरिया।
ताहि चढ़ि कोयल री बोले रे विरहिया।
राम की ताहि रे चढ़ो ना।
कोइलरी सबद सुनि सवरिया उठि बइठलि।
राम बटनिया लेके ना।"[2]

कोयल के बोलने का सम्बन्ध वर्षा के आगमन से भी माना जाता है। यदि वर्षा नहीं आएगी तो आम सूख जाएगे और कोयल धर्मराजा को शाप देगी। अतः, धर्मराजा से एक गीत में कहा गया है कि मेघराजा को शीघ्र भेजिए —

लीलूडा आबला मुकाई गिया,
कोयलड़ी दीअे शराप रे धरमराजा
मेघराजा ने वे' लेरा मोकल जो।[3]

कोयल से लोकगायक मधुर शब्द सुनाने का आग्रह कर-
अेक अतलसी कोयल, अतलस बोलो,

---

१. (क) म्हारे हरिया बन की कोयलडी।
--हाडौती लोकगीत-

(ख) कोयल राणी टुहु-टुहु करता,
--गु० लो० ६

(ग) हरियै हरियालै कालै वाली कोयल
बोनै, वोलावै, सैंया सबद सुणावै राज
--परम्परा-(भाग १

२. भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन-डा० कृष्ण देव

३ अखण्ड-आनन्द-फरवरी' ७१, पृ० ५३

दिया है। इसी प्रकार का भाव राजस्थानी गीत मे भी देखा जा सकता है। वहाँ वियोगिनी-नायिका कहती है कि श्रावण-मास का दुःख अनन्त है, अतः म मोर एव कोकिल की ध्वनि और और भी कष्टप्रद हो गई है—

सावण आयो सायबा, मोर हुआ महमत।

X X X X

श्रावण दुख अनत, मोर पिक साले।[1]

एक गुजराती गीत में भी यही भाव देखा जा सकता है—

मारे डुगरिये, डोल्या मोर रे, वान जो! मारे घेर आवो ने!

आंबा नी डाले-डाले ओनी बोली कोयलडी,

काँपे कालजडानी कोर रे कान जो![2]

एक भोजपुरी लोकगीत मे तो वियोगिनी स्वय वन-वन में कोयल-स कुहुकती है, यथा—

जइसन बन म के कोइलरि, बन-बन कुहुकेले हो।[3]

वियोग की स्थिति म प्रेम विस्तार पाता है और सयोग की स्थिति मे वह सीमित रहता है। डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है—

'वियोग म प्रेम की वृत्ति अपना प्रसार जड वस्तुओं तक कर लेती है। सयोगावस्था म वृक्ष लताओं से प्रेमालाप का अवसर नहीं होता, पर वियोगावस्था म वियोग जड पदार्थों से भी प्रेम निवेदन करता है उनसे भी मार्ग पूछता है।' जब वियोग म जड पदार्थों तक प्रम का प्रसार हो जाता है तो पक्षी

□